अवबोध

मंत्री मुनि सुमेरमल (लाडनूं)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अवबोध

(प्रश्नोत्तर शैली में सिद्धांत का सुगम बोध)

मुनि सुमेरमल (लाडनूं)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

संपादक :
मुनि उदित कुमार

©

नवम संस्करण : 2010
आवरण :
मूल्य : ..... रुपये मात्र
मुद्रक :

ISBN

AVBODH— by Muni Sumermal (Ladnun) Rs. 00.00

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्राक्कथन

शरीर में आंख का अपना महत्त्व है और पांख-पैर का अपना महत्त्व है। भले आकार में आंख छोटी होती हो, समुज्ज्वल चेतना की प्रतीक मानी जाती है। जीवन में क्रिया का अपना महत्त्व है, ज्ञान का अपना महत्त्व है। ज्ञान पूर्व भूमिका है तो क्रिया उत्तर भूमिका। पूर्व भूमिका के बिना उत्तर भूमिका स्वयं में महत्त्वहीन होती है। बिना नींव का मकान नहीं होता, केवल मॉडल हो सकता है।

स्व और पर (चेतन और जड़) के अवबोध के बिना सम्यक्त्व की उपलब्धि नहीं होती और सम्यक्त्व प्राप्ति के बिना क्रिया की सार्थकता मात्र शतांश ही रह जाती है। शत-प्रतिशत लाभ की प्राप्ति के लिए सम्यक् दर्शन की खाद जरूरी है। नव तत्त्व और षड् द्रव्य की अवगति ही व्यावहारिक सम्यक्त्व का लक्षण है। इसकी उपेक्षा अध्यात्म की उपेक्षा है।

राष्ट्रीय राजमार्ग पर कई जगह लिखा हुआ मिलता है 'देखो, चलो, दुर्घटना से बचने के लिए' इस वाक्य की सर्वाधिक उपयोगिता है। अध्यात्म के राजमार्ग में भी यह उल्लिखित हैह्नह्व'पढ़मं नाणं तओ दया'ह्नह्वपहले ज्ञान करो फिर आचरण की दिशा में आगे बढ़ो। ज्ञानशून्य क्रिया अध्यात्म का द्वार खोल नहीं पायेगी, बंधन मुक्ति की ओर अग्रसर नहीं हो सकेगी।

तामली तामस की उग्र तपस्या का वर्णन करते हुए आचार्यों ने कहा हैह्नह्व'यदि इतनी क्रिया-तपस्या सम्यक् दर्शन युक्त आत्माओं द्वारा हो तो सात 'जीव मोक्ष जा सकते हैं।' इस कथन से ही हम सम्यक्त्व की महत्ता का अंकन कर सकते हैं। सम्यक्त्व का स्वरूप हैह्नह्वज्ञान और आस्थामूलक आत्म उज्ज्वलता। 'अवबोध' इसी स्वरूप को प्रकट करने का प्रयास करता है।

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी एक समर्थ आचार्य हैं। उन्होंने अपने शिष्य समुदाय को सक्षम बनाया है, वर्चस्वी बनाया है। धर्म और अध्यात्म की अनेक विधाओं में पारंगत किया है। तेरापंथ का आगम साहित्य व योग साहित्य आज अतुलनीय माना जा रहा है। उस साहित्य शिखर का आरोहण करने हेतु कुछ प्रारंभिक साहित्य की भी रचना हुई है। उनमें एक 'अवबोध' को भी माना जा सकता है।

प्रश्न और उत्तर की शैली में तत्त्व का प्रतिपादन करना 'अवबोध' का लक्ष्य है। 'अवबोध' के पांच अध्यायों में नव तत्त्व, गति चतुष्टय, रत्नत्रय, चार धर्म व कर्म का सुगम अवबोध है। इन पांच अध्यायों में कुल ७१७ प्रश्नोत्तर हैं। इनमें जैन दर्शन के गहनतम विषयों को सरल, सुगम्य बनाने का प्रयास किया है।

पुस्तक के संपादन का सारा दायित्व मुनि उदित कुमार ने वहन किया है। मैंने केवल पुस्तक की सामग्री तैयार की थी, उसे सजाने-संवारने का काम इसने किया है। निष्काम भाव से काम करने की इसकी मनोवृत्ति आत्मीय भाव का परिचायक तो है ही, कृतज्ञता के आदर्श का दिग्दर्शन भी है।

'अवबोध' से आत्मबोध की ओर जिज्ञासुओं के कदम उठे, तो मैं अपना प्रयास सार्थक समझूंगा।

१ जनवरी, १९९१
महासभा भवनह्वकलकत्ता

मुनि सुमेर (लाडनूं)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

परावर्तन

'अवबोध' पुस्तक तत्त्वज्ञों को अच्छी लगी, जिज्ञासुओं की जिज्ञासाओं के शांत होने में यह सहायक बनी, यह संतोष का विषय है। पुस्तक का पहला संस्करण प्रायः कलकत्ता तक ही सीमित रहा, बाहर की अपेक्षापूर्ति नहीं हो सकी। दूसरे संस्करण से कुछ संपूर्ति हुई। कुछ ही समय में इसके कई संस्करण निकले। अब तक आठ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। ये सभी संस्करण तेरापंथ धर्मसंघ के समर्पित कार्यकर्ताओं की प्रसिद्ध संस्था 'मित्र परिषद्-कलकत्ता' द्वारा प्रकाशित हुए हैं। अब इसे नूतन अभिक्रम में जैन विश्व भारती प्रकाशित कर रही है।

समाज में कन्या को समय-समय पर वेश आदि देते रहना पीहर पक्ष की जीवन्तता का प्रतीक माना जाता है। पुस्तक के हर संस्करण में संशोधन/संवर्धन/परिवर्तन उसके लेखक व संपादक की जीवन्तता का प्रतीक है। हमने भी इसमें अपेक्षित परिवर्तन किया है।

मुनि उदित कुमार आदि से अंत तक इस पुस्तक के साथ जुड़ा हुआ है ही। उसे इस कार्य से अनेक ग्रंथों के पारायण करने का अवसर मिला है।

'अवबोध' पुस्तक का नवम संस्करण महातपस्वी आचार्यश्री महाश्रमण के शासनकाल के प्रारम्भ में प्रकाशित हो रहा है। आचार्यश्री वैरागी अवस्था से ही तत्त्वरसिक रहे हैं। प्रारम्भ से तत्त्वज्ञान पर गहरी पकड़ तथा पैनी दृष्टि रही है। उनका शासनकाल तत्त्वज्ञान की अभिवृद्धि एवं विस्तार का स्वर्णिम काल रहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

तत्त्वरसिक लोगों के लिए यह **'अवबोध'** पुस्तक उपयोगी बनी है। पाठक इसका समुचित अध्ययन करते रहें, यही इसकी उपादेयता है।

29 जून, 2010 **मुनि सुमेर (लाडनूं)**
(आचार्य तुलसी महाप्रयाण दिवस)
तेरापंथ भवन
नाभा (पंजाब)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रकाशकीय

साहित्य की अनेक विधाएं हैं। इतिहास साहित्य हमारे गौरवमय अतीत को उजागर करता है, कथा-साहित्य मानवीय गुणों का प्रकाशन करता है, दर्शन व आगम साहित्य अध्यात्म को मौलिक धरातल प्रदान करता है, दर्शन के तलस्पर्शी अध्ययन से प्रत्येक धर्म व परम्परागत विचारधारा को तर्क की कसौटी पर कसकर यथार्थ का बोध किया जा सकता है।

आचार्यश्री तुलसी के नेतृत्व एवं मार्गदर्शन में तेरापंथ धर्मसंघ साहित्य की विधाओं में प्रवेश ही नहीं, काफी आगे बढ़ चुका है। संस्कृत, प्राकृत भाषा, न्याय, काव्य, आगम आदि क्षेत्रों में अनेक प्रबुद्ध साधु-साध्वी तैयार हुए हैं। आचार्य भिक्षु व श्रीमज्जयाचार्य द्वारा विरचित दर्शन व सिद्धांत संबंधी अनेक प्राचीन ग्रंथ हमारे सामने उपलब्ध हैं। थोकड़ों के सीखने की भी एक लंबी परंपरा चली आ रही है। युगप्रधान आचार्यश्री महाप्रज्ञ महान् दार्शनिक एवं प्रखर साहित्यकार थे। आपश्री की सैंकड़ों पुस्तकें इसके स्वयंभू प्रमाण हैं। वर्तमान में आचार्यश्री महाश्रमण के नेतृत्व में सैद्धांतिक ज्ञान की परंपरा अविच्छिन्न रूप से आगे बढ़ रही है।

तेरापंथ दर्शन मनीषी मुनि सुमेरमलजी (लाडनूं) हमारे धर्मसंघ के माने हुए तत्त्वज्ञ व सिद्धांत मर्मज्ञ हैं। उन्हें आगम के रहस्यों की जितनी पकड़ है उतनी ही थोकड़ों व संघीय परम्परा की सांगोपांग जानकारी है। प्रस्तुत पुस्तक 'अवबोध' में मुनिश्री ने प्रश्नोत्तर शैली में दर्शन व सिद्धांत के तथ्यों को सुगम व सरल भाषा में अनावृत्त किया है।

'अवबोध' पुस्तक के अब तक आठ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। यह इसकी उपयोगिता एवं लोकप्रियता का परिचायक है। ये सभी संस्करण कोलकाता की सुप्रसिद्ध सामाजिक संस्था 'मित्र परिषद्' द्वारा प्रकाशित हुए। अब से जैन विश्व भारती को इसके प्रकाशन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

'अवबोध' का यह नौवां संस्करण प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा हैह्नह्नतत्त्व जिज्ञासु लोग इससे लाभान्वित होंगे।

१ जुलाई, २०१०

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अनुक्रमणिका

तत्त्व बोध

१. जीव तत्त्व

प्रश्न	विषय	
१.	तत्त्व की परिभाषा	३
२.	तत्त्व कितने और कौन से	३
३.	नौ तत्त्वों में जीव कितने, अजीव कितने	३
४.	नौ तत्त्वों में रूपी कितने, अरूपी कितने	३
५.	नौ तत्त्वों में ज्ञेय, हेय, उपादेय	३
६.	नौ तत्त्व भगवान् की आज्ञा में या बाहर, सावद्य या निरवद्य	३
७.	नौ तत्त्वों में एक-दूसरे के प्रतिपक्षी तत्त्व	३
८.	नौ तत्त्वों का तालाब के दृष्टांत से अवगति	३
९.	आत्मा की परिभाषा	४
१०.	जीव का लक्षण	४
११.	जीव और आत्मा एक है?	४
१२.	आत्मा के प्रकार	४
१३.	आत्मा आठ ही क्यों?	४
१४.	जीव के अन्य भेद-प्रभेद	५
१५.	जीव के सर्वाधिक भेद	५
१६.	चौरासी लाख जीवयोनि व उसकी संख्या-निर्माण का क्रम	६
१७.	मरने के बाद जीव का पथ (अंतराल गति)	७
१८.	जीव सबसे पहला आहार किसका करता है और किससे करता है?	७
१९.	उत्पन्न होने वाले जीव का आहार	७
२०.	क्या जीव अपर्याप्त अवस्था में आहार कर सकता है?	८
२१.	क्या सभी जीवों को पर्याप्त होना जरूरी?	८
२२.	पर्याप्ति जीव है या अजीव	८
२३.	पर्याप्ति की क्या उपयोगिता है?	८
२४.	प्राण और पर्याप्ति में अन्तर	९
२५.	कौन-सी पर्याप्ति व प्राण का संबंध	९
२६.	अव्यवहार व व्यवहार राशि	९
२७.	अव्यवहार का व्यवहार में या व्यवहार का अव्यवहार राशि में गमन	९
२८.	गर्भ का प्रत्यारोपण (Transplant)	९

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२९. एकेन्द्रिय में जीवत्व का न्याय १०
३०. एकेन्द्रिय में जीवन हैह्वह्वविज्ञान का दृष्टिकोण १०
३१. चेतना लक्षण वाला जीव अमनस्क क्यों? ११
३२. अमनस्क जीवों के अध्यवसाय हैं? ११
३३. समनस्क व अमनस्क जीवों के संवेदन में अंतर ११
३४. लेश्या जीव है या अजीव? ११
३५. एक जीव के आत्म प्रदेश का अधिकतम कितने लोकाकाश का अवगाहन ११
३६. लोकाकाश का कोई भाग जीव रहित है? ११

२. अजीव तत्त्व

१. अजीव की परिभाषा १२
२. अजीव रूपी या अरूपी १२
३. धर्मास्तिकाय की परिभाषा १२
४. अधर्मास्तिकाय की परिभाषा १२
५. आकाशास्तिकाय की परिभाषा १२
६. काल की परिभाषा १२
७. पुद्गलास्तिकाय की परिभाषा १२
८. पुद्गल मात्र आंख का विषय है? १३
९. लोक और अलोक की परिभाषा १३
१०. षट् द्रव्य आज्ञा में या आज्ञा बाहर, सावद्य या निरवद्य १३
११. षट् द्रव्य में एक कितने, अनेक कितने १३
१२. धर्मास्तिकाय और पुण्य एक या दो १३
१३. धर्मास्तिकाय और धर्म एक या दो १३
१४. अजीव के चौदह प्रकार १३
१५. अजीव के सर्वाधिक प्रकार १४
१६. संहनन के प्रकार १४
१७. संस्थान के प्रकार १४
१८. पुद्गल का संस्थान १५
१९. संहनन व संस्थान पुद्गल के या जीव के? १५
२०. वर्गणा के प्रकार १५
२१. वर्गणा में स्थूल व सूक्ष्म का मापदण्ड १६
२२. वर्गणा में चतुःस्पर्शी कितनी, अष्टस्पर्शी कितनी १६
२३. अष्टस्पर्शी वर्गणा के पुद्गल स्कंध अधिक है या चतुःस्पर्शी के १६
२४. चतुःस्पर्शी भाषा वर्गणा सुनी जा सकती है? १७

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२५. परमाणु में दो स्पर्श १७
२६. चतुःस्पर्शी वर्गणा में चार स्पर्श निर्णीत १७
२७. कुछ पुद्गलों को देखकर उनके जीव होने का भ्रम १७
२८. लोक में अजीव की अधिकता १७
२९. जीव और अजीव का संबंध १७
३०. जीव व अजीव का पारस्परिक उपयोग १७
३१. अजीव का अजीव के लिए व जीव का जीव के लिये उपयोग १७
३२. अनन्त प्रदेशी पुद्गल स्कंध का न्यूनतम व अधिकतम स्थान का अवगाहन १८
३३. अचित्त महास्कंध चतुःस्पर्शी या अष्टस्पर्शी १

३. पुण्य तत्त्व

१. पुण्य तत्त्व की परिभाषा १८
२. पुण्य बंध के प्रकार १८
३. संयमी को अन्न आदि देने से पुण्य का बंध १९
४. असंयमी को देने में पुण्य बंध का निषेध १९
५. संयमासंयमी को देने में पुण्य बंध का निषेध १९
६. पुण्य बंध की क्रिया १९
७. पुण्य व निर्जरा की एक ही क्रिया? १९
८. पुण्य व निर्जरा का एक ही क्रिया में फलित होने का न्याय २०
९. पुण्य के स्वतंत्र बंध न होने का न्याय २०
१०. अशुभ प्रवृत्ति से पाप का पृथक् बंध तब शुभ प्रवृत्ति से बंध क्यों नहीं? २०
११. पुण्य व निर्जरा का एक ही क्रिया में होने का आगमिक प्रसंग २०
१२. किसी व्यक्ति द्वारा जो भौतिक सहयोग मिलता है उसे अगले जन्म में अनुकूल सहयोग मिलने में पुण्य की मीमांसा २०
१३. पुण्य बंध की हेतुभूत क्रिया २०
१४. पुण्य व पाप की कर्म वर्गणा का एकत्व २१
१५. धर्म और पुण्य एक है? २१
१६. शुभ कर्मों की अवान्तर प्रकृतियां २१
१७. पुण्यानुबंधी पुण्य की चौभंगी २१
१८. पापानुबंधी पाप की स्थिति में जीव का उत्थान २२
१९. पुण्य और पुण्य प्रकृति एक या दो? २२
२०. पुण्य की स्थिति २२
२१. पुण्य की एक सामयिकी व पन्द्रह करोड़ाकरोड़ सागर की स्थिति की संगति २२
२२. नमस्कार पुण्य के पृथक् ग्रहण का न्याय २२
२३. पुण्य बंध की इच्छा का निषेध २३
२४. पुण्य के लिए क्रिया करने का निषेध २३

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२५. पुण्य हेय है या उपादेय २३
२६. मोक्ष प्राप्ति में पुण्य बाधक या साधक २३
२७. मनुष्य शरीर से मोक्ष प्राप्ति, शरीर पुण्य से प्राप्त, फिर भी मोक्ष का सहायक तत्त्व न होने का न्याय २३

४. पाप तत्त्व

१. पाप की परिभाषा २४
२. पाप के प्रकार २४
३. प्राणातिपात पापस्थान की परिभाषा २४
४. पापस्थान व आश्रव में अन्तर २४
५. अभ्याख्यान की परिभाषा २५
६. पैशुन्य की परिभाषा २५
७. परपरिवाद की परिभाषा २५
८. रति-अरति की परिभाषा २५
९. मृषा व माया मृषा का सकारण पृथक्त्व २५
१०. मिथ्यादर्शन शल्य क्यों? २५
११. घातिक कर्म पाप की प्रकृति या पुण्य की २५
१२. अधर्म और पाप एक है? २५
१३. पाप और पापी एक या दो? २६
१४. अठारह पाप का सेवन छह में कौन, नौ में कौन? २६
१५. अठारह पाप का प्रत्याख्यान छह में कौन, नौ में कौन? २६
१६. पाप की स्थिति २६
१७. पाप का उत्कृष्ट अबाधाकाल २६
१८. पाप की अवान्तर प्रकृतियां २६
१९. क्या पाप का स्वतंत्र बंध माना जा सकता है? २६
२०. पाप से भारी होने का तात्पर्य २६
२१. पाप में पाए जाने वाले चार स्पर्श २६
२२. पुण्य-पाप को स्वतंत्र तत्त्व न मानने वालों का दृष्टिकोण २६
२३. पाप बंध के मुख्य हेतु २७
२४. पाप-बंध कितने गुणस्थान तक २७

५. आश्रव तत्त्व

१. आश्रव की परिभाषा २७
२. आश्रव के प्रकार २७
३. मिथ्यात्व के प्रकार २७

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४.	कषाय के प्रकार	२८
५.	योग के प्रकार	२८
६.	मिथ्यात्व आश्रव का गुणस्थान	२९
७.	मिथ्यात्व आश्रव की जनक प्रकृतियां	२९
८.	अव्रत आश्रव का गुणस्थान	२९
९.	अव्रत आश्रव की जनक प्रकृतियां	२९
१०.	प्रमाद आश्रव का गुणस्थान	२९
११.	प्रमाद आश्रव की जनक प्रकृतियां	२९
१२.	कषाय आश्रव का गुणस्थान	२९
१३.	कषाय आश्रव की जनक प्रकृतियां	२९
१४.	योग आश्रव का गुणस्थान	३०
१५.	योग आश्रव की जनक प्रकृतियां	३०
१६.	आश्रव में भाव	३०
१७.	शुभ योग में भाव	३०
१८.	योग की चंचलता में उपशम की संगति	३०
१९.	योग की उत्पत्ति का तात्त्विक आधार	३०
२०.	आश्रव आत्म परिणाम या कर्म वर्गणा	३०
२१.	मनोवर्गणा आदि अजीव, मन आदि योग आश्रव, फिर भी आश्रव के अजीव न होने का कारण	३१
२२.	आश्रव को जीव कहने का आगम-प्रमाण	३१
२३.	काल की अपेक्षा से आश्रव की मीमांसा	३१
२४.	आश्रव सावद्य या निरवद्य	३२
२५.	कर्म और कर्मों का कर्ता एक या दो?	३२
२६.	आश्रव हेय या उपादेय	३२
२७.	मोक्ष प्राप्ति में आश्रव सहायक या बाधक	

६. संवर तत्त्व

१.	संवर की परिभाषा	३२
२.	संवर के प्रकार	३२
३.	संवर के पन्द्रह प्रकार	३२
४.	प्राणातिपात विरमण संवर आदि किसके अन्तर्गत	३३
५.	सम्यक्त्व संवर का प्रारंभ	३३
६.	क्षायिक सम्यक्त्वी के चौथे गुणस्थान में मिथ्यात्व का पाप न लगने पर भी सम्यक्त्व संवर न होने का कारण	३३

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

७. सिद्धों में संवर क्यों नहीं? ३३
८. व्रत संवर का प्रारंभ ३३
९. पांचवें गुणस्थान में व्रत संवर का निषेध क्यों? ३४
१०. अप्रमाद संवर का प्रारंभ ३४
११. अकषाय संवर का प्रारंभ ३४
१२. अयोग संवर का प्रारंभ ३४
१३. अशुभ योग के निरोध को अयोग संवर क्यों नहीं कहा? ३४
१४. देश आराधक होने पर भी संवर न होने का कारण ३४
१५. संवर की स्थिति ३४
१६. संवर कितनी गति में ३५
१७. तिर्यंच में संवर की निष्पत्ति संभव है? ३५
१८. देव व नारक में संवर न होने का कारण ३५
१९. समनस्क तिर्यंच में निसर्ग सम्यक्त्व या अधिगम ३५
२०. तिर्यंच में सम्यक्त्व प्राप्ति के हेतु ३५
२१. सभी सम्यक्त्वी मनुष्यों के संवर संभव है? ३५
२२. संवर जीव कैसे? ३६
२३. मोक्ष में चारित्र क्यों नहीं? ३६
२४. संवर व निर्जरायुक्त जीवों की संख्या का अल्पाबहुत्व ३६
२५. पंडित, बाल व बालपंडित का संबंध संवर से या निर्जरा से? ३६
२६. संवर किस शरीर में ३६

७. निर्जरा तत्त्व

१. निर्जरा की परिभाषा ३७
२. निर्जरा के प्रकार ३७
३. उजला लेखे, करणी लेखे निर्जरा का स्वरूप ३७
४. निर्जरा से प्राप्त बत्तीस गुणों में उजला लेखे व करणी लेखे कितने? ३७
५. चौदहवें गुणस्थान में कौन सी निर्जरा? ३८
६. चौदहवें गुणस्थान में अपूर्व निर्जरा कैसे? ३८
७. निर्जरा के अन्य भेद ३८
८. सकाम और अकाम की परिभाषा ३८
९. अपने आप होने वाली निर्जरा तत्त्व के अन्तर्गत है? ३८
१०. मिथ्यात्वी के सकाम निर्जरा की संभाव्यता? ३८
११. अभवी के सकाम निर्जरा की संभाव्यता? ३८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१२-१३.	निर्जरा छह में कौन, नौ में कौन, कौन-सा भाव, कौन-सी आत्मा?	३८
१४.	पुण्य-बंध में भाव, आत्मा की चर्चा	३९
१५.	निर्जरा और मोक्ष में अंतर	३९
१६.	निर्जरा व पुण्य की क्रिया एक या दो	३९
१७.	निर्जरा व पुण्य-बंध का पौर्वापर्य	३९
१८.	एकेन्द्रिय जीवों के निर्जरा का स्वरूप	३९
१९.	निर्जरा तो आठों कर्मों की, पर घातिक कर्म की निर्जरा से प्राप्त गुणों का ही वर्णन क्यों?	३९
२०.	क्षयोपशम की भांति क्षायक व उपशम के गुण भी निर्जराजन्य?	४०
२१.	उपशम भाव निर्जरा में सहयोगी कैसे?	४०
२२.	निर्जरा से अशुभ कर्म ही टूटते हैं?	४०
२३-२४.	जबर्दस्ती व लज्जावश धर्म करने में निर्जरा होती है?	४०

८. बंध तत्त्व

१.	बंध की परिभाषा	४१
२.	बंध के प्रकार	४१
३.	बंध के समय प्रदेश बंध आदि चारों का होता है?	४१
४.	प्रकृति बंध की परिभाषा	४१
५.	स्थिति बंध की परिभाषा	४१
६.	अनुभाग बंध की परिभाषा	४१
७.	प्रदेश बंध की परिभाषा	४१
८.	बंध के चार प्रकारों में मूल बंध	४२
९.	बंध और आश्रव में अन्तर	४२
१०.	बंध और पुण्य-पाप में अन्तर	४२
११.	बंध से नये कर्मों का बंध संभव है?	४२
१२.	बंध के बाधक होने का कारण	४२
१३.	बंध के साथ ही ज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियों का निर्धारण होता है?	४२
१४.	बद्ध कर्म वर्गणा का ज्ञान या अनुभव संभव है?	४२
१५.	बंध की स्वतंत्र क्रिया है?	४२
१६.	कर्म बंध के हेतु	४२
१७.	बंध जीव है या अजीव	४३
१८.	कर्म के कर्म लगता है या आत्मा के	४३
१९.	कर्मों के बंधन और उसके फल भोग में दैवी शक्ति का योग है?	४३

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

९. मोक्ष तत्त्व

१.	मोक्ष की परिभाषा	४३
२-३.	मोक्ष में भाव व आत्मा की चर्चा	४३
४.	मोक्ष में क्रिया न होने पर भी आत्मा के भेद क्यों?	४४
५.	मोक्ष प्राप्ति का स्थान	४४
६.	मोक्ष की अवस्थिति	४४
७.	मुक्तात्माओं का निवास स्थान	४४
८.	सिद्धशिला का स्वरूप व अवस्थान	४४
९.	मोक्ष गमन का क्रम	४५
१०.	'सिद्धशिला' शब्द की सार्थकता	४५
११.	मुक्तात्माओं के साथ अन्य जीव रहते हैं?	४५
१२.	सिद्धों के साथ रहने वाले एकेन्द्रिय जीवों के मोक्ष सुख की अनुभूति होती है?	४५
१३.	सिद्धों के करणीय कार्य	४६
१४.	सिद्धों के भेद	४६
१५.	तीर्थ प्रवर्तन से पूर्व मोक्ष गमन	४६
१६.	अन्य साधुओं के वेश में मोक्ष गमन	४६
१७.	स्त्री मुक्ति के संदर्भ में श्वेताम्बर और दिगम्बर का मत	४६
१८.	नपुंसक के मुक्तिगमन की समीक्षा	४६
१९.	लिंग बाधक नहीं, फिर नपुंसकलिंग में सम्यक्त्व का निषेध क्यों?	४७
२०.	चरम शरीरी में संहनन व संस्थान	४७
२१.	समुद्घात की परिभाषा व उसके प्रकार	४७
२२.	केवली समुद्घात के समय मुक्ति संभव है?	४८
२३.	स्त्री केवली के केवली समुद्घात होता है?	४८
२४.	तीर्थंकरों के केवली समुद्घात होता है?	४८
२५.	सभी केवलियों के केवली समुद्घात होता है?	४८
२६.	केवली समुद्घात कृत या स्वतः	४८
२७.	समुद्घात का क्रम	४८
२८.	सिद्धों के आत्म प्रदेश छितर जाते हैं या किसी आकार में?	४९
२९.	सिद्धों की अवगाहना	४९
३०.	सिद्धों की पर्याय बदलती है?	४९
३१.	सिद्धों में प्राण और पर्याप्ति	४९
३२.	एक समय में उत्कृष्ट सिद्ध	४९
३३.	उत्कृष्ट सिद्ध होने के कितने समय बाद पुनः उत्कृष्ट सिद्ध होते हैं	४९

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३४.	मध्यवर्ती सात समय में सिद्ध होने का क्रम	४९
३५-३६.	अधोलोक व ऊर्ध्वलोक में एक समय में उत्कृष्ट सिद्ध	५०
३७.	मेरु पर्वत के पंडुक वन पर कोई सिद्ध होता है?	५०
३८.	समुद्री क्षेत्र में एक समय में उत्कृष्ट सिद्ध	५०
३९.	समुद्री क्षेत्र में चरम शरीरी के आने का कारण	५०
४०.	किसी भी मुनि का अपहरण संभव है?	५०
४१.	समुद्री क्षेत्र में मुनि से अप्कायिक जीवों की हिंसा होती है	५०
४२.	उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक समय में कितने सिद्ध	५०
४३.	महाविदेह में एक साथ १०८ सिद्ध होने का कारण	५०
४४.	सबसे छोटी अवगाहना वाले एक समय में कितने सिद्ध	५१
४५.	एक साथ कितने तीर्थंकर सिद्ध होते हैं?	५१
४६.	एक साथ बीस तीर्थंकरों के निर्वाण कल्याणक मनाने का क्रम	५१
४७.	अकर्म भूमि से मुक्ति व उत्कृष्ट सिद्ध	५१
४८.	अतीर्थ में एक साथ कितने सिद्ध	५१
४९.	अन्यलिंग में एक साथ कितने सिद्ध	५१
५०.	मेरु पर्वत की चूलिका पर मोक्ष गमन	५१
५१.	एकेन्द्रिय में एकाभवतारी जीव होते हैं?	५१
५२.	महाविदेह में अर-काल का प्रभाव	५२
५३.	किस योनि से निकले मनुष्यों के न्यूनतम व अधिकतम सिद्ध होने का स्वरूप	५२

गतिबोध

१. देव गति

१.	देव की परिभाषा	५५
२.	देवत्व प्राप्ति के हेतु	५५
३.	देवों की पहचान	५५
४.	देवों में पांच पर्याप्ति होने का कारण	५५
५.	देवों के प्रकार	५५
६.	भवनपति देवों का निवास	५६
७.	भवनपति देवों को कुमार कहने का कारण	५६
८.	भवनपति देवों के प्रकार	५६
९.	व्यंतर देवों का निवास	५६

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१०.	व्यंतर का तात्पर्य	५६
११.	व्यंतर देवों के प्रकार	५६
१२.	व्यंतर देवों के ऊपर आने का कारण	५७
१३.	वट, पीपल आदि वृक्षों में देवों के वास की समीक्षा	५७
१४.	मनुष्यलोक में व्यंतर देवों का हस्तक्षेप रहता है?	५७
१५.	हनुमानजी आदि देव कौन है?	५७
१६.	हनुमानजी मुक्त हो गये, फिर उनका प्रकट होना कैसे संभव है?	५८
१७.	ज्योतिष्क देवों का वास	५८
१८.	ज्योतिष्क देवों के जन्म स्थान पृथ्वियां हैं या विमान	५८
१९.	ज्योतिष्क पृथ्वियां भ्रमणशील हैं या स्थिर	५८
२०.	ज्योतिष्क देवों के प्रकार	५८
२१.	वैमानिक देवों का निवास	५८
२२.	वैमानिक देवों के प्रकार	५८
२३.	वैमानिक देवों में शासक-शासित का क्रम	५९
२४.	वैमानिक देवों के अवधि ज्ञान का तारतम्य	५९
२५.	देवयोनि में उत्पन्न होने में संहनन का सम्बन्ध	६०
२६.	त्रायस्त्रिंशक देवों का स्वरूप	६०
२७.	लोकान्तिक देवों का स्वरूप	६०
२८.	किल्विषिक देवों का स्वरूप	६०
२९.	किल्विषिक देव बनने का कारण	६०
३०.	देवों के इन्द्र	६०
३१.	असंख्य सूर्य, चंद्रमा में से तीर्थंकरों के कल्याणक महोत्सव में प्रतिनिधित्व का न्याय	६१
३२.	अभवी जीवों के देवों में उत्पन्न होने की सीमा	६१
३३.	संयमी की वैमानिक देवलोक में उत्पत्ति	६१
३४.	संयमी-संपर्क के बावजूद देवों में व्रत न होने का कारण	६१
३५.	शासन अधिष्ठायक देवी-देवताओं का क्रम पूर्व निश्चित है?	६२
३६.	कई गंभीर विपत्तियों में शासन अधिष्ठायक देवी-देवता के सक्रिय न होने का कारण	६२
३७.	देवों में नींद तथा असात वेदनीय का विपाकोदय संभव है?	६२
३८.	देवों का आहार	६२
३९.	देवों के तीर्थंकर गोत्र का बंध संभव है?	६२
४०.	नौ ग्रैवेयक व पांच अनुत्तर विमान के देवों में काम प्रचारणा न होने का कारण	६२

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४१. वैमानिक देवलोक के विमानों की संख्या ६३
४२. देवों में क्षयोपशम के प्रकार ६३
४३. देवों की स्थिति ६४
४४. देवों की गति ६६

२. मनुष्य गति

१. मनुष्य की परिभाषा ६६
२. मनुष्य गति की परिभाषा ६६
३. मनुष्य के प्रकार ६६
४. सम्मूर्च्छिम मनुष्य का स्वरूप ६६
५. सम्मूर्च्छिम मनुष्य की उत्पत्ति के चौदह स्थान ६६
६. सम्मूर्च्छिम मनुष्य को मनुष्य कहने का कारण ६६
७. सम्मूर्च्छिम मनुष्य का आयुष्य ६७
८. सम्मूर्च्छिम मनुष्य पर्याप्त होते हैं? ६७
९. गर्भज मनुष्य के प्रकार ६७
१०. कर्म भूमि की परिभाषा ६७
११. तिरेसठ शलाकापुरुषों का उत्पत्ति क्षेत्र ६७
१२. कर्म भूमि में राजा-प्रजा की व्यवस्था ६७
१३. अकर्म भूमि की परिभाषा ६७
१४. अकर्म भूमि के क्षेत्र ६७
१५. अकर्म भूमि के क्षेत्र संलग्न हैं या अलग-अलग। ६८
१६. अकर्म भूमि क्षेत्र में उत्पन्न यौगलिकों का आयुष्य व अवगाहना ६८
१७. अकर्म भूमि के मनुष्यों का भोजन ६८
१८. अकर्म भूमि में उत्पन्न बच्चों के पालन-पोषण की व्यवस्था ६८
१९. अकर्म भूमि के मनुष्यों का पारिवारिक संबंध ६९
२०. अकर्म भूमि के मनुष्यों की गति ६९
२१. अकर्म भूमि के मनुष्यों के अन्तिम संस्कार का क्रम ६९
२२. छप्पन अंतर्द्वीप क्षेत्रों की अवस्थिति ६९
२३-२४. अकर्म भूमि व छप्पन अंतर्द्वीप के मनुष्यों में चारित्र व सम्यक्त्व होता है? ६९
२५. अकर्म भूमि के अतिरिक्त मुक्ति होने के कारण ७०
२६. मनुष्य के अलावा अन्य गति से मुक्ति संभव है? ७०
२७. मनुष्य में निर्जरा के भेद ७०

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३. तिर्यंच गति

१. तिर्यंच की परिभाषा ७०
२. ऊर्ध्व व अधो लोक में त्रस जीवों की संभावना ७०
३. तिर्यंच के प्रकार ७१
४. तिर्यंच में कितनी इन्द्रिय वाले जीव ७१
५. तिर्यंच में जीवों की संख्या ७१
६. तिर्यंच का आयुष्य पुण्य प्रकृति या पाप प्रकृति? ७१
७. तिर्यंच में दंडक ७२
८. तिर्यंच में गुणस्थान ७२
९. तिर्यंच बारहव्रती होते हैं? ७२
१०. तिर्यंच श्रावक द्वारा सुपात्र दान की दलाली संभव है? ७२
११. जलचर तिर्यंच श्रावक द्वारा सामायिक आदि व्रतों की उपासना ७२
१२. तिर्यंच में अधिकतम उपयोग ७२
१३. तिर्यंच में क्षायिक सम्यक्त्व हो सकता है? ७२
१४. तिर्यंच में निर्जरा के भेद ७२
१५. तिर्यंच में क्षयोपशम के प्रकार ७२
१६. अनन्तकाय की परिभाषा ७३
१७. साधारण वनस्पति की अवगाहना ७३
१८. छोटे शरीरों में अनंत जीवों की अवस्थिति कैसे? ७३
१९. साधारण वनस्पति का आयुष्य ७३
२०. अन्य योनियों के जीवों का एक मुहूर्त्त में जन्म-मरण ७३
२१. साधारण वनस्पति पर्याप्त होती है? ७३
२२. एक शरीर में उत्पन्न होने वाले अनन्त जीवों का एक साथ जन्म-मरण ७४
२३. अनंतकायिक जीवों में उपयोग ७४
२४. अनंतकायिक जीवों में राशि ७४
२५. संयोग से जन्मे विकलेन्द्रिय जीव सम्मूर्च्छिम कैसे? ७४
२६. चींटी आदि के अण्डे होते हैं; फिर सम्मूर्च्छिम कैसे? ७४
२७. संभोग और संयोग में अन्तर ७४

४. नरक गति

१. नरक की परिभाषा ७४
२. नरक के प्रकार ७५
३. नरक के गोत्र ७५

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४.	नरक स्थान	७५
५.	पृथ्वियों का आधार	७५
६.	पृथ्वियों के शाश्वत-अशाश्वत की चर्चा	७५
७.	नरकों के नरकावास	७५
८.	पृथ्वियों की लम्बाई-चौड़ाई	७५
९.	पृथ्वियों की मोटाई	७६
१०.	नरकों में अन्तर, प्रतर तथा उनकी ऊँचाई	७६
११.	नरक की पृथ्वियां लोकान्त तक हैं?	७६
१२.	नारक जीवों का अवधि या विभंग अज्ञान	७७
१३.	नारक जीवों की स्थिति	७७
१४.	नरक गमन में संहनन का संबंध	७७
१५.	कुछ योनिगत जीवों के नरकगमन का क्रम	७८
१६.	नरकावासों में गंध	७८
१७.	नरक की दीवारों का स्पर्श	७८
१८.	नरक भूमियों में प्रकाश है?	७८
१९.	नरक में देवों का आवागमन	७८
२०.	अन्तिम चार नरकों में वेदना का क्रम	७८
२१.	परमाधार्मिक देवों के प्रकार	७८
२२.	परमाधार्मिक देवों के नरक गमन का प्रयोजन	७९
२३.	परमाधार्मिक देवों के कष्ट देने में कर्म-बंध	७९
२४.	नरकायु बंध के कारण	७९
२५.	नरक में निर्जरा के भेद	७९
२६.	वेदना-व्यथित नारक जीवों की क्रिया	७९
२७.	नारक जीवों की विकुर्वणा	७९
२८.	नारक जीवों के सात वेदनीय कर्म का विपाकोदय होता है?	७९
२९.	नारक जीवों में पति-पत्नी संबंध हैं?	८०
३०.	नारक जीवों में सम्यक्त्व होती है?	८०
३१.	देव सहयोग से अन्यत्र नरकायु का भोग संभव है?	८०
३२.	नरक से गति	८०
३३.	नारक जीवों में क्षयोपशम के प्रकार	८०
३४-३७.	चरम शरीरी, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव कौन-सी नरक से निकल कर बन सकते हैं?	८०
३८.	नरक से निकलने वाले भावी तीर्थंकर क्या अंतिम क्षण तक वेदना भोगते हैं?	८०

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मार्गबोध

१. ज्ञान मार्ग

१.	उपयोग की परिभाषा	८५
२.	उपयोग के प्रकार	८५
३.	साकार व अनाकार उपयोग के भेद	८५
४.	मति ज्ञान की परिभाषा	८५
५.	मति ज्ञान के प्रकार	८५
६.	श्रुतनिश्रित मति का स्वरूप	८६
७.	अश्रुतनिश्रित मति का स्वरूप	८६
८.	जाति स्मरण स्वतंत्र ज्ञान है?	८६
९.	जाति स्मृति में भवों की संख्या	८६
१०.	श्रुत ज्ञान की परिभाषा	८७
११.	श्रुत ज्ञान के प्रकार	८७
१२.	मति ज्ञान व श्रुत ज्ञान में अंतर	८७
१३.	अवधि ज्ञान की परिभाषा	८८
१४.	अवधि ज्ञान के प्रकार	८८
१५.	अवधि ज्ञान भवहेतुक है?	८८
१६.	मनुष्यों का अवधि ज्ञान अप्रतिपातिक है?	८८
१७.	अवधि ज्ञान का क्षेत्र	८८
१८.	मनः पर्यव ज्ञान की परिभाषा	८९
१९.	मनःपर्यव ज्ञान के प्रकार	८९
२०.	अवधि ज्ञान व मनः पर्यव ज्ञान में अन्तर	८९
२१.	केवल ज्ञान की परिभाषा	८९
२२.	पांच ज्ञान में प्रत्यक्ष व परोक्ष की चर्चा	९०
२३.	पांच ज्ञान में भाषक व अभाषक की चर्चा	९०
२४.	ज्ञान की उपलब्धि क्षयोपशम से होती है?	९०
२५.	ज्ञान और अज्ञान में अन्तर	९०
२६.	ज्ञान पांच व अज्ञान तीन होने का कारण	९०
२७.	दर्शन की परिभाषा	९०
२८.	दर्शन का स्वरूप	९०
२९.	ज्ञान व दर्शन का सम्बन्ध	९०
३०.	श्रुत ज्ञान व मनः पर्यव ज्ञान के दर्शन न होने का कारण	९१

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२. दर्शन (सम्यक्त्व) मार्ग

१.	सम्यक्त्व का महत्त्व	९१
२.	सम्यक्त्व की परिभाषा	९१
३.	सम्यक्त्व प्राप्ति का कारण	९१
४.	सम्यक्त्व के हेतु	९१
५.	सम्यक्त्व के प्रकार	९२
६.	सम्यक्त्व का स्वरूप	९२
७.	सम्यक्त्व की स्थिति	९२
८.	एक भव में सम्यक्त्व (कितनी बार) आने का क्रम	९२
९.	चार गतियों में सम्यक्त्व प्राप्ति का क्रम	९२
१०.	चार गतियों में सम्यक्त्व के होने का क्रम	९२
११.	सम्यक्त्व का उच्छेद	९३
१२.	सम्यक्त्व का अल्पाबहुत्व	९३
१३.	सम्यक्त्व का गुणस्थान से संबंध	९३
१४.	सम्यक्त्वी में चारित्र	९३
१५.	सम्यक्त्वी में शरीर	९३
१६.	सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद जीव का संसार-भ्रमण	९४
१७.	सम्यक्त्वी परित संसारी होता है?	९४
१८.	सम्यक्त्वी की गति	९४
१९.	सम्यक्त्वी के अकाम निर्जरा होती है?	९४
२०.	क्षपक श्रेणी में औपशमिक सम्यक्त्वी का आरोहण संभव है?	९४
२१.	उपशम श्रेणी में क्षायिक सम्यक्त्वी का आरोहण संभव है?	९४
२२.	क्षयोपशम सम्यक्त्वी के श्रेणी-आरोहण संभव है?	९५
२३.	एक भव में उत्कृष्टतः श्रेणी आरोहण	९५
२४.	सम्यक्त्व के लक्षण	९५
२५.	सम्यक्त्व के दूषण	९५
२६.	सम्यक्त्व के भूषण	९५
२७.	सम्यक्त्व के आचार	९६
२८.	सम्यक्त्व को स्थिर रखने का उपाय	९६

३. चारित्र मार्ग

१.	चारित्र की परिभाषा	९६
२.	चारित्र का महत्त्व	९६
३.	चारित्र प्राप्ति का कारण	९७
४.	चारित्र के प्रकार	९७
५.	चारित्र के प्रकारों की परिभाषा	९७

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

६.	चारित्र के उपभेद	९७
७.	चारित्र का गुणस्थान से संबंध	९८
८.	षट् द्रव्य व नौ तत्त्व में चारित्र की चर्चा	९८
९.	भाव व आत्मा के संदर्भ में चारित्र की चर्चा	९८
१०.	चारित्र की प्राप्ति तीर्थ स्थापना के बाद होती है?	९८
११.	चारित्र सवेदी है?	९९
१२.	चारित्र सरागी है?	९९
१३.	कल्प के साथ चारित्र का संबंध	९९
१४.	चारित्र में ज्ञान	९९
१५.	चारित्र में श्रुत ज्ञान	९९
१६.	चारित्र में शरीर	९९
१७.	चारित्र में लेश्या	१००
१८.	चारित्र का सम्यग् आराधक आगे कितनी बार चारित्र ले सकता है?	१००
१९.	एक भव में चारित्र-ग्रहण की संख्या	१००
२०.	अनेक भवों में चारित्र-प्राप्ति की संख्या	१००
२१.	चारित्र की स्थिति	१००
२२.	चारित्र का उत्थान व पतन	१०१
२३.	चारित्र का अल्पाबहुत्व	१०१
२४.	चारित्र का क्षेत्र	१०१
२५.	संयमी की गति	१०१
२६.	संयमी की स्वर्ग में पद-प्राप्ति	१०१
२७.	सामायिक व छेदोपस्थापनीय चारित्र कब-कब होता है?	१०२
२८.	परिहार विशुद्धि चारित्र का स्वरूप	१०२
२९.	परिहार विशुद्धि चारित्र संघबद्ध साधना में होता है?	१०३
३०.	परिहार विशुद्धि की परंपरा चलती है?	१०३
३१.	यथाख्यात चारित्र चरम शरीरी में या अचरम में?	१०३
३२.	पांच चारित्र वालों में क्षयोपशम के बोल?	१०३
३३.	चारित्र ग्रहण करने में वेश परिवर्तन की अनिवार्यता है?	१०३
३४.	तिरेसठ शलाकापुरुषों में कौन कितने चारित्र ग्रहण कर सकता है?	१०३
३५.	निदानकृत व्यक्ति को चारित्र आ सकता है?	१०३

धर्मबोध

१. दान धर्म

१.	दान की परिभाषा	१०७
२.	दान के प्रकार	१०७

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३.	लौकिक व लोकोत्तर दान की परिभाषा	१०७
४.	दान के दस प्रकार	१०७
५.	दस दान में लौकिक व लोकोत्तर की चर्चा	१०७
६.	दस दान में सावद्य व निरवद्य की चर्चा	१०७
७.	अधर्म दान का पृथक् उल्लेख क्यों?	१०८
८.	लोकोत्तर दान के प्रकार	१०८
९.	गोदान, भूमिदान आदि लौकिक है लोकोत्तर?	१०८
१०.	सुपात्र की परिभाषा	१०८
११.	सुपात्र की कसौटी	१०८
१२.	दान में भाव व आत्मा की चर्चा	१०८
१३.	दान के प्रसंग में छह में नौ में की चर्चा	१०८
१४.	दान देने का अधिकारी गृहस्थ ही है?	१०८
१५.	दान मात्र पुण्य का हेतु है?	१०९
१६.	करण की परिभाषा	१०९
१७.	तीनों करण की सदृशता	१०९
१८.	करना पाप, करवाना धर्म है?	१०९
१९.	असंयमी के खाने-पीने आदि की व्यवस्था में धर्म है?	१०९
२०.	दान में पुण्य-पाप का विभेद क्यों?	१०९
२१.	साधु के भोजन करने में धर्म है?	१०९
२२.	अशुद्ध आहार लेने वाले मुनि दोष के भागीदार होते हैं?	११०
२३.	विसर्जन की परिभाषा	११०
२४.	विसर्जन व वितरण में संगति	११०
२५.	चंदा आदि देना धर्म है?	११०
२६.	सामाजिक व्यवहार निभाना धर्म है?	११०
२७.	सामाजिक कर्तव्य आत्म धर्म क्यों नहीं?	११०

२. शील धर्म

१.	शील की परिभाषा	१११
२.	ब्रह्मचर्य के प्रकार	१११
३.	ब्रह्मचर्य के अन्य प्रकार	१११
४.	शील (संयम साधना) के उत्कृष्ट भेद	११२
५.	शील (ब्रह्मचर्य) के उत्कृष्ट भेद	११२
६.	ऋषभ व महावीर के मध्यवर्ती तीर्थंकरों के समय ब्रह्मचर्य महाव्रत था?	११३
७.	पांच ही महाव्रतों का पालन युगपत् होता है?	११३
८.	ब्रह्मचर्य का महाव्रत व अणुव्रत स्वरूप	११४
९.	ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अतिचार	११४

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१०. मैथुन विरमण का तात्पर्य ११५
११. मैथुनसेवी हिंसाजन्य पाप करता है? ११५
१२. मैथुन सेवन से गर्भ में जीव उत्पत्ति की संख्या ११५
१३. मैथुनसेवी पुरुष के किस प्रकार का असंयम होता है? ११५
१४. पूरे जीव जगत् के मैथुन सेवन का पाप लगता है? ११५
१५. समलैंगिक मैथुन सेवन से ब्रह्मचर्य का नाश ११५
१६. बिना संभोग के गर्भाधान ११६
१७. ब्रह्मचर्य पालन में भाव और आत्मा की चर्चा ११६
१८. ब्रह्मचर्य पालन में सावद्य-निरवद्य की चर्चा ११६
१९. ब्रह्मचर्य तप क्यों? ११६
२०. जैनागमों में ब्रह्मचर्य की महिमा ११६
२१. ब्रह्मचारी की गति ११७
२२. अनिच्छापूर्वक ब्रह्मचर्य पालन में लाभ ११७
२३. संतानोत्पत्ति के लिये मैथुन सेवन के औचित्य पर जैन दृष्टिकोण ११७
२४. ब्रह्मचर्य-रक्षा के उपाय (नौ बाड़) ११७
२५. बाड़ व कोट की परिभाषा ११८
२६. आहार का ब्रह्मचर्य के साथ सम्बन्ध ११८

३. तप धर्म

१. तप की परिभाषा ११९
२. तप का महत्त्व ११९
३. तप और निर्जरा एक है? ११९
४. तप का उद्देश्य ११९
५. तप के प्रकार ११९
६. अनशन की परिभाषा व प्रकार १२०
७. ऋषभ का बारहमासी तप इत्वरिक अनशन है? १२०
८. अनशन के उपभेदह्रह्रदस प्रत्याख्यान १२०
९. ऊनोदरी की परिभाषा और प्रकार १२१
१०. भिक्षाचरी की परिभाषा और प्रकार १२१
११. रस परित्याग की परिभाषा और प्रकार १२१
१२. विकृतियों के प्रकार १२१
१३. कायक्लेश की परिभाषा और प्रकार १२२
१४. कायक्लेश व परीषह में अन्तर १२२
१५. प्रतिसंलीनता की परिभाषा और प्रकार १२२
१६. प्रायश्चित्त की परिभाषा और प्रकार १२२
१७. विनय की परिभाषा और प्रकार १२३

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१८. वैयावृत्त्य की परिभाषा और प्रकार १२३
१९. स्वाध्याय की परिभाषा और प्रकार १२३
२०. ध्यान की परिभाषा और प्रकार १२३
२१. व्युत्सर्ग की परिभाषा और प्रकार १२४
२२. पंचाग्नि तप पर जैन दृष्टिकोण १२४
२३. पंचाग्नि तप तपने में निर्जरा होती है? १२४
२४. अज्ञान तप की परिभाषा १२५
२५. मिथ्यात्वी व सम्यक्त्वी की तपस्या में अन्तर १२५
२६. मिथ्यात्वी की तपस्या संसार वृद्धि का कारण है? १२५
२७. तपस्या में भाव व आत्मा की चर्चा १२५
२८. तप के प्रयोग १२५
२९. भौतिक अभिसिद्धि के लिये तप का विधान है? १२५
३०. तपस्वियों का सम्मान आत्म उज्ज्वलता को मंद नहीं करता? १२५

४. भाव धर्म

१. भाव की परिभाषा १२६
२. परिणाम विशेष भाव १२६
३. भाव की शुभता-अशुभता १२६
४. भावशून्य क्रिया का स्थान १२६
५. भावयुक्त व भावशून्य क्रिया में प्रायश्चित्त का अंतर १२६
६. भावों की उत्कृष्ट निर्मलता व मलिनता के साथ संहनन का संबंध १२७
७. श्रेणी आरोहण में भावों की प्रधानता १२७
८. भरत को भावों से महल में विशेष उपलब्धि १२७
९. भाव को अतिरिक्त महत्त्व देने का कारण १२७
१०. भावना व अनुप्रेक्षा में अन्तर १२७
११. भावना के प्रकार १२७
१२. आत्मा के अवस्थारूप भाव १२८
१३. भावों का कर्म से संबंध १२८
१४. पांच भाव जीव हैं या अजीव १२८
१५. जीव के उदय निष्पन्न के प्रकार १२८
१६. औपशमिक भाव के प्रकार १२९
१७. क्षायिक भाव के प्रकार १२९
१८. क्षायोपशमिक भाव के प्रकार १३०

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१९.	पारिणामिक भाव के प्रकार	१३०
२०.	जीवाश्रित पारिणामिक के प्रकार	१३०
२१.	अजीवाश्रित पारिणामिक के प्रकार	१३१
२२.	भाव का छठा प्रकार	१३१
२३.	सान्निपातिक के भंग	१३१
२४.	एक भाव कहाँ होता है?	१३२
२५.	दो भाव कहाँ होते हैं?	१३२
२६.	तीन भाव कहाँ होते हैं?	१३२
२७.	चार भाव कहाँ होते हैं?	१३२
२८.	पांच भाव कहाँ होते हैं?	१३२
२९.	पांच भावों में ज्ञेय, हेय, उपादेय की चर्चा	१३३
३०.	पांच भावों में सावद्य-निरवद्य की चर्चा	१३३
३१.	पांच भावों की छह द्रव्य व नौ तत्त्व की चर्चा	१३३
३२.	पांच भावों के निष्पन्न की छह में नौ में की चर्चा	१३३

कर्म बोध

१. प्रकृति व करण

१.	कर्म की परिभाषा	१३७
२.	कर्म की प्रकृतियां	१३७
३.	कर्म की उत्तर प्रकृतियां	१३७
४.	ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीय कर्म बंध के कारण	१३९
५.	वेदनीय कर्म बंध के कारण	१३९
६.	मोहनीय कर्म बंध के कारण	१४०
७.	आयुष्य कर्म बंध के कारण	१४०
८.	नाम कर्म बंध के कारण	१४०
९.	गोत्र कर्म बंध के कारण	१४०
१०.	अंतराय कर्म बंध के कारण	१४१
११.	कर्म प्रकृतियों में शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप, घाति-अघाति कर्म	१४१
१२.	घाति कर्मों में देशघाती व सर्वघाती	१४१
१३.	घातिक की परिभाषा	१४१
१४.	आठ कर्मों में बंधकारक कर्म	१४१

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१५. कर्मों का गुणस्थान में बंध का क्रम १४१
१६. कर्मों की सत्ता कौन से गुणस्थान तक १४२
१७. भवोपग्राही कर्म की परिभाषा १४२
१८. कर्म के कार्य १४२
१९. कर्म की स्थिति १४२
२०. कर्म के दृष्टांत १४३
२१. कषाय के सोलह उदाहरण १४३
२२. कषाय चतुष्क से आत्म-गुणों के अभिघात का क्रम १४३
२३. प्रत्येक प्रकृति की परिभाषा और उसके प्रकार १४४
२४. पिंड प्रकृति की परिभाषा और उसके प्रकार १४४
२५. आयुष्य कर्म बंध में काम आने वाले करण १४४
२६. द्रव्य करण की परिभाषा १४४
२७. क्षेत्र करण की परिभाषा १४४
२८. जीव असंलग्न पुद्गल वर्गणा को ग्रहण कर सकता है? १४५
२९. अधिक पुद्गलों के ग्रहण करने का क्या क्रम है? १४५
३०. काल करण की परिभाषा १४५
३१. भव करण की परिभाषा १४५
३२. एक कर्म की वर्गणा अधिकतम कितने भव तक भोगी जा सकती है? १४५
३३. भाव करण की परिभाषा १४५
३४. करण की उत्तर प्रकृतियां १४५

२. अवस्था व समवाय

१. कर्म की अवस्थाएं १४६
२. कर्म की उदयकालीन व बंधकालीन अवस्थाएं १४६
३. बंध की परिभाषा १४६
४. बंध के प्रकार १४६
५. कर्म बंध के चार प्रकारों का क्रम १४६
६. उद्वर्तन की परिभाषा १४७
७. अपवर्तन की परिभाषा १४७
८. सत्ता की परिभाषा १४७
९. उदय की परिभाषा १४७
१०. कर्म किस रूप में फल देता है? १४७
११. फल प्राप्ति में द्रव्य, क्षेत्र आदि की भूमिका १४७

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१२.	कर्म के अशुभ फल को रोकना संभव है?	१४७
१३.	उदय के बिना बंधे हुए कर्म फल देते हैं?	१४८
१४.	कर्मफल व ग्रहफल एक है?	१४८
१५.	उदीरणा की परिभाषा	१४८
१६.	अबाधाकाल की परिभाषा	१४८
१७.	अबाधाकाल व सत्ता में अंतर	१४८
१८.	संक्रमण की परिभाषा	१४८
१९.	सभी कर्म प्रकृतियों का संक्रमण होता है?	१४९
२०.	सोपक्रमी व निरुपक्रमी आयुष्य की परिभाषा	१४९
२१.	अकाल मृत्यु होती है?	१४९
२२.	उपघात के प्रकार	१४९
२३.	सोपक्रमी व निरुपक्रमी आयुष्य वाले जीव	१४९
२४.	उपशम की परिभाषा	१४९
२५.	उपशम का कर्म की अवस्थाओं में समावेश होने का कारण	१५०
२६.	उपशम शुभ या अशुभ, सावद्य या निरवद्य	१५०
२७.	उपशम संवर कैसे?	१५०
२८.	निधत्ति की परिभाषा	१५०
२९.	निकाचना की परिभाषा	१५०
३०.	निधत्ति व निकाचित में अंतर	१५०
३१.	निकाचित कर्म को तोड़ा जा सकता है?	१५०
३२.	हर कार्य की निष्पत्ति में कर्म की ही भूमिका है?	१५१
३३-३७.	कार्य की निष्पत्ति में काल, स्वभाव, कर्म, पुरुषार्थ व नियति की भूमिका	१५१
३८.	ईश्वरवादी व कर्मवादी मत में अंतर	१५२
३९.	सुखाभिलाषा होने से प्राणी दुःख स्वयं क्यों भुगतेंगे?	१५२

३. बंध व विविध

१.	कार्मण शरीर व कर्म का संबंध	१५२
२.	कर्म के रूपी-अरूपी, जीव-अजीव की चर्चा	१५२
३.	आत्म प्रदेश अधिक या कर्म प्रदेश	१५३
४.	निर्जरित कर्म वर्गणा चतुःस्पर्शी या अष्टस्पर्शी	१५३
५.	कर्म बंध का मुख्य हेतु	१५३
६.	जीव वध से संबंधित क्रियाएं	१५३
७.	जीव के कितनी क्रियाएं	१५३

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

८. कर्म रूपी व आत्मा अरूपी, फिर दोनों का संबंध कैसे? १५३
९. चेतन पर जड़ का प्रभाव कैसे? १५४
१०. कर्म का आत्मा पर किस रूप में असर १५४
११. कर्म आत्मा के सभी प्रदेशों के बंधते हैं? १५४
१२. बंधने वाली कर्म वर्गणा का कर्म से संबंध १५४
१३. बंधने वाली कर्म वर्गणाएं आठों कर्मों में समान रूप में विभक्त या न्यूनाधिक १५४
१४. कर्मोदय के बिना भी कर्म का बंध हो सकता है? १५५
१५. कर्म के उदय में उसका बंध न होने का समय १५५
१६. चौदहवें गुणस्थान में कर्म बंध न होने का कारण १५५
१७. सात कर्मों की उत्तर प्रकृतियों का बंध भी प्रति समय होता है? १५५
१८. ऐसी कर्म प्रकृति जिसका बंध हुए बिना अनंतकाल बीत गया १५५
१९. तीर्थंकर बनने की इच्छा क्यों नहीं? १५६
२०. चौदहवें गुणस्थान में जीव कर्ममुक्त होता है? १५६
२१. शुभ-अशुभ कर्म का बंध युगपत् होता है? १५६
२२. शुभ कर्म को तोड़ा जा सकता है? १५६
२३. तीसरे गुणस्थान में आयुष्य का बंध क्यों नहीं? १५६
२४. छद्मस्थ अकषायी होता है? १५६
२५. वीतराग की परिभाषा १५७
२६. वीतराग के कर्म बंध होता है? १५७
२७. अंतराल गति में कर्म बंध होता है? १५७
२८. अंतराल गति में कर्म बंध कैसे व किसके? १५७
२९. आत्मा के साथ अनादिकाल से संबंधित कार्मण शरीर का अलगाव कैसे? १५७
३०. कर्म के विपाकोदय में निमित्त की भूमिका १५८

परिशिष्टह्ह१. नाम कर्म १५९

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

तत्त्व बोध

१. जीव तत्त्व
२. अजीव तत्त्व
३. पुण्य तत्त्व
४. पाप तत्त्व
५. आश्रव तत्त्व
६. संवर तत्त्व
७. निर्जरा तत्त्व
८. बंध तत्त्व
९. मोक्ष तत्त्व

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१. जीव तत्त्व

प्रश्न १. तत्त्व क्या है?

उत्तर : तत्त्व का अर्थ है—पदार्थ, पारमार्थिक वस्तु या सत्। तत्त्व वह है जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त हो। यही जैन दर्शन का परिणामी नित्यवाद है। जो ज्ञेय पदार्थ त्रिकाल सत्य है, संसार परिभ्रमण के साधन व मोक्ष साधना में उपयोगी हैं, तत्त्व कहलाते हैं। इसे दर्शन के क्षेत्र में उपयोगितावाद कहा जाता है। इन्हें नव-सद्भाव पदार्थ भी कहते हैं।

प्रश्न २. तत्त्व कितने हैं और कौन-कौन से हैं?

उत्तर : तत्त्व नौ हैं—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

प्रश्न ३. नौ तत्त्वों में जीव व अजीव कितने और कौन-कौन से हैं?

उत्तर : नौ तत्त्वों में पांच जीव हैं—जीव, आश्रव, संवर, निर्जरा, मोक्ष।
चार अजीव हैं—अजीव, पुण्य, पाप, बंध।

प्रश्न ४. नौ तत्त्वों में रूपी कितने हैं व अरूपी कितने हैं?

उत्तर : नौ तत्त्वों में जीव, आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष अरूपी हैं। पुण्य, पाप व बंध रूपी हैं। अजीव रूपी-अरूपी—दोनों है।

प्रश्न ५. नौ तत्त्वों में ज्ञेय, हेय व उपादेय कितने हैं?

उत्तर : ज्ञेय नौ ही तत्त्व हैं। संवर, निर्जरा व मोक्ष उपादेय हैं। अवशिष्ट छह हेय हैं।

प्रश्न ६. नौ तत्त्व भगवान् की आज्ञा में हैं या बाहर, सावद्य हैं या निरवद्य?

उत्तर : जीव भगवान् की आज्ञा में भी हैं और बाहर भी। जीव की शुभ परिणति आज्ञा में तथा अशुभ परिणति आज्ञा के बाहर है। अजीव, पुण्य, पाप व बंध आज्ञा में व बाहर दोनों नहीं, क्योंकि अजीव है। आश्रव दोनों है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय व अशुभ योग—आज्ञा बाहर तथा शुभ योग आज्ञा में है। संवर, निर्जरा व मोक्ष आज्ञा में है। इसी तरह सावद्य-निरवद्य समझना चाहिए। आज्ञा से बाहर सावद्य तथा आज्ञा में निरवद्य है।

प्रश्न ७. नौ तत्त्वों में एक-दूसरे के प्रतिपक्षी तत्त्व कौन-कौन से हैं?

उत्तर : नौ तत्त्वों में एक-दूसरे के प्रतिपक्षी तत्त्व इस प्रकार हैं—

जीव	—	अजीव
पुण्य	—	पाप

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आश्रव — संवर

बंध — निर्जरा, मोक्ष

प्रश्न ८. नौ तत्त्वों को संक्षेप में कैसे समझा जा सकता है?

उत्तर : नौ तत्त्वों को समझने के लिए आचार्य भिक्षु द्वारा प्रदत्त दृष्टान्त मननीय है—

जीव एक तालाब के समान है।

अजीव तालाब का अभाव रूप है।

पुण्य-पाप तालाब का निकलता हुआ पानी है।

आश्रव तालाब का नाला है।

संवर तालाब के नाले को रोकना है।

निर्जरा तालाब से पानी को उलीचकर या अन्य उपायों से निकालने की प्रक्रिया है।

बंध तालाब के अन्दर का पानी है।

मोक्ष खाली तालाब के समान है।

प्रश्न ९. जीव की क्या परिभाषा है?

उत्तर : असंख्य प्रदेशात्मक चेतना समूह को जीव कहते हैं।

प्रश्न १०. जीव का लक्षण क्या है?

उत्तर : 'उवओग लक्खणो जीवो'—उपयोग जीव का लक्षण है—चेतना का व्यापार उपयोग कहलाता है। जीव-अजीव का भेद चेतना के आधार पर होता है।

प्रश्न ११. क्या जीव और आत्मा एक है?

उत्तर : जीव और आत्मा एक ही है। भगवती सूत्र में जीव, आत्मा आदि तेईस पर्यायवाची नामों का उल्लेख है।

प्रश्न १२. आत्मा के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : आत्मा के दो प्रकार हैं—(१) द्रव्य आत्मा (२) भाव आत्मा। केवल चेतनात्मक सत्ता का नाम द्रव्य आत्मा है। उसका कोई भेद नहीं होता। आत्मा के गुण और क्रियाओं को भाव आत्मा कहते हैं। उसके सात भेद हैं—कषाय, योग, उपयोग, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य।

प्रश्न १३. आत्मा आठ ही क्यों?

उत्तर : आत्मा के आठ तो मुख्य भेद हैं, वैसे आत्मा की शुभ और अशुभ जितनी अवस्थाएं हैं, उतनी ही आत्माएं मानी जा सकती हैं। कोई सामायिक लेकर बैठा है, वह उसकी सामायिक आत्मा है। कोई क्रोध में उत्तप्त बना है, वह उसकी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

क्रोध आत्मा है। पृथक्-पृथक् अवस्था भेद से उसके नामानुसार आत्मा कही जा सकती है। इस प्रकार आत्मा की असंख्य अवस्थाएं हैं, उतनी ही आत्माएं मानी जा सकती हैं। इसे 'अनेरी' अर्थात् अन्य आत्मा भी कहा जाता है।

प्रश्न १४. क्या जीव के और भी भेद-प्रभेद होते हैं?

उत्तर : भवजन्य अवस्था की दृष्टि से अनेक भेद किये गये हैं। जैसे—
दो भेद—सूक्ष्म-बादर, त्रस-स्थावर, पर्याप्त-अपर्याप्त, संज्ञी-असंज्ञी।
तीन भेद—स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद आदि।
चार भेद—नरक गति, तिर्यञ्च गति, मनुष्य गति, देव गति।
इस प्रकार पांच, छह, चौदह, चौबीस आदि भेद आगमों में वर्णित हैं।

प्रश्न १५. जीव के सबसे अधिक भेद कितने आये हैं?

उत्तर : आगमों में जीव के ५६३ भेद बतलाये हैं—

(१) सात नरक के पर्याप्त एवं अपर्याप्त—१४

(२) तिर्यंच के प्रकार—४८
सूक्ष्म, बादर पृथ्वीकाय के पर्याप्त, अपर्याप्त-४
सूक्ष्म, बादर अप्काय के पर्याप्त, अपर्याप्त-४
सूक्ष्म, बादर तेजस्काय के पर्याप्त, अपर्याप्त-४
सूक्ष्म, बादर वायुकाय के पर्याप्त, अपर्याप्त-४
सूक्ष्म वनस्पतिकाय के पर्याप्त, अपर्याप्त-२
बादर-प्रत्येक एवं साधारण वनस्पति के पर्याप्त, अपर्याप्त-४
तीन विकलेन्द्रिय के पर्याप्त, अपर्याप्त-६
जलचर, स्थलचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प तथा खेचर—इन पांच प्रकार के संज्ञी एवं असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय (१०)
इनके पर्याप्त एवं अपर्याप्त—२०=कुल—४८

(३) मनुष्य के ३०३ प्रकार—संज्ञी मनुष्य के २०२ प्रकार, १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ३० अकर्मभूमिज तथा ५६ अन्तर्द्वीप के यौगलिक, कुल १०१ के पर्याप्त, अपर्याप्त २०२। असंज्ञी मनुष्य के १०१ प्रकार—उक्त १०१ संज्ञी मनुष्यों के मल-मूत्रादि १४ अशुचि (अपवित्र) स्थानों में उत्पन्न होने वाले संमूर्च्छिम मनुष्य जो अपर्याप्त अवस्था में ही मर जाते हैं १०१,=कुल २०२+१०१=३०३

(क) १५ कर्म भूमि इस प्रकार हैं—
५ भरत, ५ ऐरावत, ५ महाविदेह।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

(ख) ३० अकर्म भूमि इस प्रकार हैं—

५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु, ५ हरिवर्ष, ५ रम्यक्वर्ष, ५ हेमवत्, ५ हैरण्यवत्।

(ग) ५६ अंतर्द्वीप इस प्रकार हैं—

लवण समुद्र में पूर्व और पश्चिम में स्थित द्वीप समूह।

(४) देवता के १९८ प्रकार—

१० भवनपति, १५ परमाधार्मिक, १६ वानव्यन्तर, १० त्रिजृंभक, १० ज्योतिष्क, ३ किल्विषिक, ९ लोकान्तिक, १२ वैमानिक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान, कुल ९९ जाति के पर्याप्त एवं अपर्याप्त १९८[1]।

प्रश्न १६. चौरासी लाख जीव योनि क्या है और यह संख्या कैसे बनी है?

उत्तर : उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं। वहां जीव उत्पन्न होता है और सर्वप्रथम (ओज) आहार ग्रहण करता है। योनियों की सर्वाधिक संख्या ८४ लाख है। वह इस प्रकार बनती है—प्रत्येक की योनि संख्या में तीन शून्य हटाने के बाद जो संख्या रहती है उसका आधा करने पर उसकी मूल योनि की संख्या आ जाती है, जैसे—पृथ्वीकाय के योनिस्थान की संख्या सात लाख है। इसकी मूल संख्या ३५० है। उनमें वर्ण[2], गंध[3], रस[4], स्पर्श[5] व संस्थान[6] के भेद से यह सात लाख हो जाती है। इसका क्रम इस प्रकार है—

३५०	×	५ वर्ण	=	१७५०
१७५०	×	२ गंध	=	३५००
३५००	×	५ रस	=	१७,५००
१७,५००	×	८ स्पर्श	=	१,४०,०००
१,४०,०००	×	५ संस्थान	=	७,००,०००

इसी तरह अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय की मूल योनि ३५०-३५०, प्रत्येक वनस्पति की ५००, साधारण वनस्पति की ७००, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय की १००-१००, नारक, देवता व तिर्यंच पंचेन्द्रिय की २००-२००,

---

१. नरक, तिर्यंच, मनुष्य व देव संबंधी विस्तृत जानकारी देखें—दूसरे अध्याय 'गतिबोध' में।

२. वर्ण पांच हैं—कृष्ण, नील, रक्त, पीत, श्वेत।

३. गंध दो हैं—सुगंध, दुर्गंध।

४. रस पांच हैं—अम्ल, मधुर, कटु, कषाय, तिक्त।

५. स्पर्श आठ हैं—शीत, उष्ण, रुक्ष, स्निग्ध, लघु, गुरु, मृदु, कर्कश।

६. संस्थान पांच हैं—विस्तार से देखें इसी अध्याय के अजीव विभाग (प्रश्न १७) में।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मनुष्य की ७००। इन सबकी कुल ४२०० योनियां हैं। पूर्व प्रक्रिया के अनुसार ८४,००,००० संख्या हो जाती है।

प्रश्न १७. मरने के बाद जीव इन योनियों में किस रास्ते से जाता है?

उत्तर : मरने के बाद जीव इन योनियों में अन्तराल गति से जाता है। एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को धारण करने के लिए जीव जो गति करता है, उसे अन्तराल गति कहते हैं।

वह दो प्रकार की है—(१) ऋजु (२) वक्र।

ऋजु गति सदैव एक समय की होती है, जबकि वक्र गति में दो, तीन या चार समय लग सकता है। जहां एक घुमाव हो वहां दो, दो घुमाव हो वहां तीन और तीन घुमाव हो वहां चार समय लगता है। वक्र गति में तीन से अधिक घुमाव नहीं आते। इसमें जीव ज्यादा से ज्यादा दो समय (तीसरा व चौथा) तक अनाहारक रहता है।

प्रश्न १८. जीव सबसे पहले आहार किसका करता है और किससे करता है?

उत्तर : आहार के तीन प्रकार हैं—(१) ओज आहार (२) रोम आहार (३) कवल (प्रक्षेप) आहार।

१. ओज आहार — जन्म के प्रथम समय में लिया जाने वाला आहार।
२. रोम आहार — रोम (छिद्रों) से लिया जाने वाला व सहज होने वाला आहार।
३. कवल आहार — मुख आदि से किया जाने वाला आहार।

इन तीन आहारों में जीव सर्वप्रथम ओज आहार ग्रहण करता है। जन्म के समय शरीर के अनुरूप जो आहार होता है, वह आहार तैजस् शरीर से ग्रहण किया जाता है। उस ओज आहार का अंश जीवन भर कायम रहता है।

प्रश्न १९. उत्पन्न होने वाला जीव ओज आहार के सहारे ही बढ़ता है या अन्य आहार भी ग्रहण करता है?

उत्तर : उत्पन्न होने वाला जीव केवल ओज आहार से नहीं बढ़ता। वहां ओज आहार के साथ ही अन्य पुद्गलों के ग्रहण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। देवता और नारकीय जीवों का शरीर रचनाकाल अन्तर्मुहूर्त्त का है। उतने समय में उनका शरीर पूर्ण बन जाता है। नारक और देव गर्भज नहीं, औपपातिक माने जाते हैं। संमूर्च्छिम जीवों की शरीर-रचना की प्रक्रिया भी इसी प्रकार प्रारंभ होती है।

गर्भज जीव समनस्क पंचेन्द्रिय हैं। उनका गर्भकाल अलग-अलग है। मनुष्य का गर्भकाल सामान्यतः सवा नौ महीनों का है। इसमें कुछ अपवाद भी है। कई सात

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

महीने में ही परिपूर्ण शरीर वाले बनकर जन्म ले लेते हैं। कई दस, ग्यारह तथा इससे भी अधिक महीने गर्भ में रह जाते हैं।

गर्भ में जीव के ओज आहार के अतिरिक्त अन्य आहार लेने की प्रक्रिया के बारे में 'तंदुल वैयालिय पइन्ना' में लिखा है—माता की रस संग्रहणी नाड़ी से गर्भ का सीधा सम्बन्ध होता है। उस नाड़ी के माध्यम से माता के भोजन से बनने वाले रस से गर्भ का यथोचित पोषण होता है। तीन आहार में इसे कवल आहार कहते हैं।

प्रश्न २०. क्या जीव अपर्याप्त अवस्था में आहार कर सकता है?

उत्तर : जीव के अपर्याप्त अवस्था में आहार करने का क्रम प्रारम्भ हो जाता है। आहार की शरीर-निर्माण में महती अपेक्षा है। मृत्यु के बाद दूसरी योनि में जन्म लेते ही सबसे पहले जीव शरीर बनाने योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है। पर्याप्त तो वह बाद में बनता है। ओज आहार के बाद प्रतिसमय आहार ग्रहण होता रहता है।

प्रश्न २१. क्या सभी जीवों को पर्याप्त होना जरूरी है?

उत्तर : यह जरूरी नहीं कि सभी जीव पर्याप्त बनें ही। अनेक जीव अपर्याप्त अवस्था में ही मर जाते हैं। जैसे—अमनस्क मनुष्य। पर्याप्तियां छह हैं—

(१) आहार पर्याप्ति (२) शरीर पर्याप्ति

(३) इंद्रिय पर्याप्ति (४) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति

(५) भाषा पर्याप्ति (६) मनः पर्याप्ति

जिस योनि में जितनी पर्याप्तियां होनी होती हैं, उतनी पर्याप्तियां प्राप्त होने पर पर्याप्त माना जाता है, न होने पर अपर्याप्त माना जाता है। औदारिक शरीरधारी पर्याप्त व अपर्याप्त दोनों होते हैं। देवता और नारक जीव पर्याप्त होकर व पूर्ण आयुष्य भोग कर ही मरते हैं।

प्रश्न २२. पर्याप्ति जीव है या अजीव?

उत्तर : पर्याप्ति पौद्गलिक शक्ति है, अतः अजीव है।

प्रश्न २३. पर्याप्ति की क्या उपयोगिता है?

उत्तर : जीव को शरीर धारण करने तथा मन, वचन, शरीर को सतत सक्रिय बनाये रखने के लिए पर्याप्ति की अनिवार्य उपयोगिता है। जीव के किसी भी योनि में जन्म लेने के साथ ही इन पर्याप्तियों की निष्पत्ति का क्रम प्रारम्भ हो जाता है। क्रमशः ये पर्याप्तियां पूर्ण रूप से निष्पन्न होकर सक्रिय हो जाती हैं। ये पर्याप्तियां शरीर वर्गणा, मनोवर्गणा, वचन वर्गणा, श्वासोच्छ्वास वर्गणा को ग्रहण कर उन्हें अपने-अपने स्थान पर नियोजित करती हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २४. प्राण और पर्याप्ति में क्या अंतर है?

उत्तर : जीवन की शक्ति को प्राण कहते हैं तथा जीव द्वारा ग्रहण किये हुए पुद्गलों की शक्ति को पर्याप्ति कहते हैं। प्राण और पर्याप्ति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। प्राण के अस्तित्व से पर्याप्ति की तथा पर्याप्ति के अस्तित्व से प्राण की सक्रियता रहती है। प्राण जीवन शक्ति है, पर्याप्ति पौद्गलिक शक्ति है, दोनों में मूलभूत यही अन्तर है।

प्रश्न २५. कौन-सी पर्याप्ति का कौन-से प्राण के साथ सम्बन्ध है?

उत्तर :

पर्याप्ति	प्राण
आहार	आयुष्य
शरीर	शरीर
इन्द्रिय	श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय
श्वासोच्छ्वास	श्वासोच्छ्वास
भाषा	वचन
मन	मन

प्रश्न २६. अव्यवहार राशि और व्यवहार राशि क्या है?

उत्तर : ये जीवों के ही दो विभाग हैं। विभिन्न योनियों में जन्म लेने वाले जीव व्यवहार राशि के हैं, यथा—आज जो मनुष्य हैं वे कभी पशु, पक्षी आदि थे और जो पशु, पक्षी आदि हैं वे मनुष्य आदि बन सकते हैं। केवल सूक्ष्म निगोद (साधारण वनस्पति) में ही रहने वाले जीव अव्यवहार राशि के होते हैं। इनमें किसी प्रकार का व्यवहार-भेद नहीं होता।

प्रश्न २७. अव्यवहार राशि का व्यवहार राशि में और व्यवहार राशि का अव्यवहार राशि में क्या जीव जा सकता है?

उत्तर : अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में जीव आ सकता है, किन्तु व्यवहार राशि से अव्यवहार राशि में नहीं जा सकता। जितने जीव मोक्ष जाते हैं, उतने ही जीव अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में आ जाते हैं।

प्रश्न २८. क्या गर्भ में डिम्ब का प्रत्यारोपण किया जा सकता है?

उत्तर : जीव जब गर्भ में उत्पन्न होता है तब माता की उदरस्थ थैली में अवस्थित होता है। वहां का वातावरण एवं तापमान गर्भगत डिम्ब के बढ़ने में सहायक होता है। वैसा तापमान व वातावरण अन्यत्र मिले, तो गर्भ की थैली के अतिरिक्त भी जीव मानव शरीर का निर्माण कर सकता है। श्वेताम्बर परम्परा मानती है कि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भगवान् महावीर के डिम्ब का प्रत्यारोपण हुआ था। भगवान् महावीर ८२ रात्रियां देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में रहे, शेष रात्रियां महारानी त्रिशला की कुक्षि में रहे। और भी इस प्रकार के प्रसंग आते हैं। आज के विज्ञान ने तो परखनली शिशु के रूप में ऐसा करके दिखा भी दिया है।

प्रश्न २९. पृथ्वी, पानी आदि एकेन्द्रिय जीवों में जीवत्व कैसे माना जा सकता है?

उत्तर : एकेन्द्रिय में चेतना अव्यक्त रूप में विद्यमान है, उसकी व्यक्तता नहीं होने से सामान्यतः पता लग पाना कठिन है। किन्तु वनस्पति आदि में कुछ बातें मनुष्य जैसी हैं। आचारांग सूत्र में वनस्पति और मनुष्य की समानता का विवेचन आता है।

प्रश्न ३०. एकेन्द्रिय में जीवन है, इस संदर्भ में विज्ञान कहां तक पहुंचा है?

उत्तर : पृथ्वी आदि पांच एकेन्द्रिय (स्थावर काय) में जीवन है। यह जैन दर्शन की स्पष्ट अवधारणा है। इस क्षेत्र में विज्ञान शोध कर रहा है। हरियाली में जीवन है इस तथ्य को तो उसने स्पष्ट तौर पर स्वीकार कर लिया है। भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु ने प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य की भांति वनस्पति-हरियाली अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति में बढ़ती है और सिकुड़ती है, हर्षित व खिन्न होती है। वह मिट्टी, जल, वायु आदि का आहार लेती है, उसके अभाव में वह जीवित नहीं रह सकती। मनुष्य की तरह वनस्पति शाकाहारी व मांसाहारी होती है, मैथुन व परिग्रह की वृत्ति वाली होती है, नींद भी लेती है। अनुकूल संगीत के माध्यम से वनस्पति के बढ़ने और फल देने में असाधारण वृद्धि होती है।

वायु (हवा) की सजीवता के संबंध में विज्ञान का मत है कि सूई के अग्रभाग जितनी हवा में लाखों जीव रहते हैं, जिन्हें 'थेक्सस' कहा जाता है। अग्नि को यदि आक्सीजन नहीं मिलता, तो वह तत्क्षण बुझ जाती है। विज्ञान ने एक लघु जलकण में ३६४५० जीव बताये हैं वैसे जैन दर्शन वायु, अग्नि व पानी में असंख्य जीव मानता है।

जैन मतानुसार पृथ्वीकाय में निरंतर वृद्धि का क्रम चालू रहता है। यह अब विज्ञान से भी सिद्ध होता है। कई वैज्ञानिकों के प्रयोगों एवं मंतव्यों से यह बात प्रमाणित होती है। वैज्ञानिक एच.टी. वर्सटपिन के अनुसार न्युमिति के पर्वतों ने अभी अपनी शैशवावस्था ही पार की है। इंडोनेशिया के द्वीप समूह की भूमि ऊंची उठ रही है। शिशु के शरीर की भांति पर्वत भी धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं। जैन दर्शन जहां इसके एक कण में असंख्य जीव मानता है वहां विज्ञान ने एक ग्राम मिट्टी के ढेले में कई लाख दर्जन सूक्ष्म जीवाणु माने हैं।

© Jain Vishva Bharati　For Personal & Private Use Only　https://books.jvbharati.org

प्रश्न ३१. चेतना लक्षण वाला जीव अमनस्क क्यों होता है?

उत्तर : चेतना-संवेदनशीलता जीव का लक्षण है, किन्तु मन पुद्गल सापेक्ष चिन्तनधारा का नाम है। वह शक्ति सब जीवों को प्राप्त नहीं होती, इसलिये संसारी जीव समनस्क और अमनस्क, दोनों होते हैं। गर्भज और वैक्रिय शरीरी पंचेन्द्रिय जीव समनस्क होते हैं, शेष सभी अमनस्क होते हैं।

प्रश्न ३२. क्या अध्यवसाय अमनस्क जीवों के भी होता है?

उत्तर : अध्यवसाय समनस्क व अमनस्क, दोनों के होते हैं। अध्यवसाय चेतना की सूक्ष्म भावधारा का नाम है। चेतना की प्रारम्भिक हलचल की पर्याय ही अध्यवसाय है, वह अव्यक्त रूप से होती है। योग—चेतना की स्थूलतम हलचल है और अध्यवसाय सूक्ष्म—आन्तरिक।

प्रश्न ३३. समनस्क (मन सहित) और अमनस्क (मन रहित) जीवों के संवेदन में कोई फर्क पड़ता है?

उत्तर : संवेदन तो प्राणी मात्र के होता है, किन्तु उनमें व्यक्तता का फर्क पड़ता है। समनस्क में व्यक्त होता है, अमनस्क जीवों के संवेदन अव्यक्त होता है।

प्रश्न ३४. लेश्या जीव है या अजीव?

उत्तर : तैजस् शरीर के साथ काम करने वाली भावधारा को लेश्या कहते हैं। इसके दो प्रकार हैं—(१) द्रव्य लेश्या (२) भाव लेश्या।

द्रव्य लेश्या पौद्गलिक है, अतः अजीव है। भाव लेश्या योग से पूर्व की भावधारा है, अतः जीव है।

प्रश्न ३५. एक जीव के आत्म प्रदेश ज्यादा से ज्यादा कितने लोकाकाश को रोक सकते हैं?

उत्तर : एक जीव के आत्म प्रदेश समग्र लोकाकाश को रोक लेते हैं। चौदह रज्ज्वात्मक[1] लोक में एक प्रदेश जितना स्थान भी खाली नहीं रहता। यह स्थिति केवली समुद्घात[2] के चौथे समय में बनती है, इसे सचित्त महास्कंध भी कहा जाता है।

प्रश्न ३६. क्या लोकाकाश का कोई भाग जीव रहित है?

उत्तर : लोकाकाश का एक प्रदेश जितना स्थान भी जीव रहित नहीं है। सूक्ष्म जीवों से सम्पूर्ण लोकाकाश भरा हुआ है।

---

१. ३,८१,२७,९७० मन वजन को 'भार' कहते हैं। ऐसे १००० भार के लोहे के गोले को कोई देवता ऊपर से नीचे फेंके, वह गोला छह महीने छह दिन छह प्रहर छह घड़ी में जितने क्षेत्र को लांघ जाये, उतने क्षेत्र को रज्जु-परिमाण कहते हैं।

२. समुद्घात का विस्तृत वर्णन देखें इसी अध्याय के मोक्ष विभाग (प्रश्न २१ से २७) में।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२. अजीव तत्त्व

प्रश्न १. अजीव की क्या परिभाषा है?

उत्तर : चेतना रहित पदार्थ को अजीव कहा जाता है। लोक में मूलतः दो ही तत्त्व हैं—जीव, अजीव। सारा विस्तार इन दो तत्त्वों का ही है। जैन आगमों में इन्हें जीव राशि (समूह), अजीव राशि कहा गया है।

प्रश्न २. अजीव रूपी है या अरूपी?

उत्तर : अजीव रूपी (मूर्त्त) अरूपी (अमूर्त), दोनों हैं।

रूपी : (१) पुद्गलास्तिकाय

अरूपी : (१) धर्मास्तिकाय (२) अधर्मास्तिकाय
(३) आकाशास्तिकाय (४) काल

प्रश्न ३. धर्मास्तिकाय की क्या परिभाषा है?

उत्तर : जीव और पुद्गल की गति में जो अपेक्षित सहायक होता है, उसे धर्मास्तिकाय कहते हैं।

प्रश्न ४. अधर्मास्तिकाय की क्या परिभाषा है?

उत्तर : जीव और पुद्गल के स्थिर होने में जो अपेक्षित सहायक होता है, उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं।

प्रश्न ५. आकाशास्तिकाय की क्या परिभाषा है?

उत्तर : सभी द्रव्यों को अवकाश-भाजन देने वाले को आकाशास्तिकाय कहते हैं। यह लोक और अलोक, दोनों में व्याप्त है।

प्रश्न ६. काल की क्या परिभाषा है?

उत्तर : वर्तना को काल कहते हैं। समय, आवलिका[1], सेकिण्ड, मिनिट, मुहूर्त्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष आदि इसी आधार पर बनते हैं। यह वैसे औपचारिक एवं काल्पनिक द्रव्य है।

प्रश्न ७. पुद्गलास्तिकाय की क्या परिभाषा है?

उत्तर : जो वर्ण, गंध, रस, स्पर्श युक्त हो, जिसमें मिलने और बिखरने का स्वभाव हो, उसे पुद्गलास्तिकाय कहते हैं।

---

१. असंख्य समयों की एक आवलिका होती है। एक मुहूर्त्त में १,६७,७७,२१६ आवलिकाएं होती हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ८. क्या पुद्गल मात्र आंख का विषय बनते हैं?

उत्तर : पुद्गल मात्र वैसे रूपी होते हैं, किन्तु यह जरूरी नहीं कि सभी रूपी पदार्थ अपनी इन आंखों के विषय बने। पुद्गल के तीन प्रकार हैं—

(१) द्विस्पर्शी (२) चतुःस्पर्शी (३) अष्टस्पर्शी।

द्विस्पर्शी पुद्गल परमाणु होते हैं। चतुःस्पर्शी कर्मवर्गणा, मनोवर्गणा, वचनवर्गणा, श्वासोच्छ्वास वर्गणा होती है। ये दोनों इन आंखों से अदृश्य हैं। अष्टस्पर्शी पुद्गल स्कंधों में भी ऐसे अनेक स्कंध हैं, जो इन आंखों से नहीं दीख पाते, किन्तु जो दीखते हैं वे सब अष्टस्पर्शी पुद्गल हैं।

प्रश्न ९. लोक और अलोक किसे कहते हैं?

उत्तर : जहां षट् (छह) द्रव्य—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय व जीवास्तिकाय है, उसे लोक कहते हैं। जहां केवल आकाश है, वह अलोक है। जीवास्तिकाय षट् द्रव्यों में एक मात्र जीव है।

प्रश्न १०. षट् द्रव्य आज्ञा में है या आज्ञा बाहर, सावद्य है या निरवद्य?

उत्तर : जीव आज्ञा में तथा आज्ञा के बाहर, दोनों है, जबकि पांच द्रव्य दोनों नहीं, अजीव है। इसी तरह सावद्य-निरवद्य जानना चाहिए।

प्रश्न ११. षट् द्रव्य में एक कितने? अनेक कितने?

उत्तर : धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय—ये तीन द्रव्य एक हैं। शेष तीनों अनेक हैं।

प्रश्न १२. धर्मास्तिकाय और पुण्य एक है या दो?

उत्तर : दो। धर्मास्तिकाय अरूपी है, पुण्य रूपी है।

प्रश्न १३. धर्मास्तिकाय और धर्म एक है या दो?

उत्तर : दो। धर्मास्तिकाय अजीव है, धर्म जीव है।

प्रश्न १४. अजीव के चौदह प्रकार कौन से हैं?

उत्तर :

धर्मास्तिकाय के तीन प्रकार	—	१. स्कंध, २. देश, ३. प्रदेश।
अधर्मास्तिकाय के तीन प्रकार	—	४. स्कंध, ५. देश, ६. प्रदेश।
आकाशास्तिकाय के तीन प्रकार	—	७. स्कंध, ८. देश, ९. प्रदेश।
काल का एक भेद	—	१० काल।
पुद्गलास्तिकाय के चार प्रकार	—	११. स्कंध, १२. देश, १३. प्रदेश, १४. परमाणु।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न १५. अजीव के सर्वाधिक प्रकार कितने हैं?

उत्तर : अजीव के सर्वाधिक प्रकार ५६५ हैं। वर्ण-५, रस-५, गंध-२, स्पर्श-८, संस्थान-५, कुल-२५ भेद के ५३० प्रकार बनते हैं। जैसे—पांच वर्ण को रस आदि २० भेद से गुणा करने पर १०० भेद होते हैं। इसी प्रकार रस के १००, गंध के ४६, संस्थान के १०० होते हैं। स्पर्श के आठ भेदों में हरेक के प्रतिपक्षी स्पर्श को छोड़कर अवशिष्ट छह स्पर्श से गुणा किया जाता है, तभी २३×८=१८४ बनते हैं। इस प्रकार १०० वर्ण के+१०० रस के+४६ गंध के+१०० संस्थान के+१८४ स्पर्श के=५३० हो जाते हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव व गुण से गुणा करने पर २५ होते हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय के स्कंध, देश, प्रदेश गिनने से-९, एक भेद काल को मिला लेने से १० भेद हो गये। इस प्रकार ५३०+२५+१०=५६५।

प्रश्न १६. संहनन किसे कहते हैं और उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : संहनन का अर्थ है शारीरिक अस्थि संरचना अथवा शारीरिक सामर्थ्य। उसके छह प्रकार हैं—

(१) वज्रऋषभनाराच — इसमें तीन शब्द हैं वज्र-अस्थिकील, ऋषभ-परिवेष्टित अस्थि, नाराच (मर्कट बंध) गुंथी हुई अस्थि। परस्पर गुंथी हुई दो हड्डियों और तीसरी अस्थि से परिवेष्टित इन तीन अस्थियों को भेदकर अस्थिकील आर-पार मजबूती के साथ लगा हुआ होता है उसे वज्रऋषभनाराच कहते हैं।

(२) ऋषभनाराच — परस्पर गुंथी हुई दो अस्थियों पर तीसरी अस्थि का परिवेष्टन होना।

(३) नाराच — दो अस्थियों का परस्पर गुंथा हुआ होना।

(४) अर्धनाराच — दो अस्थियों का एक ओर से गुंथा हुआ होना।

(५) कीलिका — दो अस्थियों का एक-दूसरे से मात्र स्पर्श होना।

(६) सेवार्त — अस्थियों का परस्पर जुड़ा हुआ न होना।

प्रश्न १७. संस्थान किसे कहते हैं और उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : संस्थान का अर्थ है आकृति। ये जीव सहित शरीर के होते हैं। उसके छह प्रकार हैं—

(१) समचतुरस्र — अस्र-कोण, शरीर के चारों कोण, सभी अवयव प्रमाण के अनुसार हों।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

(२) न्यग्रोध परिमंडल — न्यग्रोध-बड़ का वृक्ष। शरीर के नाभि से ऊपर का भाग पूर्ण और नीचे का भाग प्रमाणहीन होना।

(३) सादि — शरीर के ऊपर का भाग प्रमाणहीन व नीचे का पूर्ण होना।

(४) कुब्ज — कुबड़ा होना।

(५) वामन — बौना, शरीर के अंगोपांगों का छोटा होना।

(६) हुण्ड — शरीर के किसी भी अवयव का प्रमाणोपेत न होना।

प्रश्न १८. क्या पुद्गल के भी संस्थान होता है?

उत्तर : संस्थान के सामान्यतः दो प्रकार हैं—

(१) इत्थंस्थ — नियत आकार।

(२) अनित्थंस्थ — अनियत आकार।

पुद्गल के जो पांच संस्थान माने गये हैं, वे इत्थंस्थ हैं। सभी अनियत आकार अनित्थंस्थ के अन्तर्गत आ जाते हैं। वे पांच संस्थान हैं—

(१) वृत्त — मोदक की भांति गोलाकार।

(२) परिमंडल — चूड़ी की भांति गोलाकार।

(३) त्रिकोण — सिंघाड़ा फल की भांति।

(४) चतुष्कोण — चौकोर, पंचकोण, षट्कोण इसी में आ जाते हैं।

(५) आयत — लंबाई, यह 'विस्तृत' अर्थ का भी बोधक है।

प्रश्न १९. संहनन और संस्थान पुद्गल के होते हैं या जीव के?

उत्तर : संहनन और संस्थान, दोनों पुद्गल के होते हैं। किन्तु संहनन और संस्थान जीवगृहित शरीर रूप में परिणत पुद्गल विशेष में माना गया है। संस्थान शरीर के अतिरिक्त पुद्गल में भी होता है, उसका स्वरूप भिन्न है। शरीरमुक्त जीव के संहनन और संस्थान, दोनों नहीं होते।

प्रश्न २०. वर्गणा के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : सजातीय पुद्गल समूह को वर्गणा कहते हैं, उसके आठ प्रकार हैं—

(१) औदारिक वर्गणा — औदारिक शरीर के रूप में प्रयुक्त होने वाले सजातीय पुद्गल समूह।

(२) वैक्रिय वर्गणा — वैक्रिय शरीर के रूप में प्रयुक्त होने वाले सजातीय पुद्गल समूह।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

(३) आहारक वर्गणा[1] — आहारक शरीर के रूप में प्रयुक्त होने वाले सजातीय पुद्गल समूह।

(४) तैजस् वर्गणा — तैजस् शरीर के रूप में प्रयुक्त होने वाले सजातीय पुद्गल समूह।

(५) कार्मण वर्गणा — कार्मण शरीर के रूप में प्रयुक्त होने वाले सजातीय पुद्गल समूह।

(६) मनो वर्गणा — मन के रूप में प्रयुक्त होने वाले सजातीय पुद्गल समूह।

(७) वचन वर्गणा — वचन के रूप में प्रयुक्त होने वाले सजातीय पुद्गल समूह।

(८) श्वासोच्छ्वास वर्गणा — श्वासोच्छ्वास के रूप में प्रयुक्त होने वाले सजातीय पुद्गल समूह।

वर्गणा के कहीं-कहीं तेईस व बयालीस भेद भी मिलते हैं।

प्रश्न २१. वर्गणा में स्थूल व सूक्ष्म का मानदंड क्या है?

उत्तर : स्थूल-अष्टस्पर्शी, सूक्ष्म-चतुःस्पर्शी पुद्गल होते हैं। अष्टस्पर्शी, जिनमें वर्ण, गंध, रस के साथ आठों स्पर्श होते हैं। चतुःस्पर्शी, जिनमें वर्ण, गंध और रस के साथ चार स्पर्श होते हैं।

प्रश्न २२. वर्गणा में चतुःस्पर्शी कितनी हैं और अष्टस्पर्शी कितनी?

उत्तर : मन, वचन, श्वासोच्छ्वास और कार्मण—ये चार वर्गणाएं चतुःस्पर्शी और शेष अष्टस्पर्शी हैं।

प्रश्न २३. अष्टस्पर्शी वर्गणा के पुद्गल स्कंध अधिक होते हैं या चतुःस्पर्शी वर्गणा के?

उत्तर : चतुःस्पर्शी वर्गणा के पुद्गल स्कंध अधिक होते हैं। वैसे आठों वर्गणाएं अनन्त प्रदेशी हैं।

---

१. आहारक शरीर चौदह पूर्वों के धारक लब्धिवान् मुनि को प्राप्त होता है। जब चौदह पूर्वधारी मुनि को किसी गहन विषय में संदेह उत्पन्न होता है और सर्वज्ञ की सन्निधि नहीं होती और औदारिक शरीर से अन्य क्षेत्रवर्ती सर्वज्ञ के पास जाना संभव नहीं होता तब वे मुनि अपनी आहारक लब्धि का प्रयोग करते हैं। उस लब्धि से एक हाथ का छोटा-सा विशिष्ट शरीर बनाते हैं। वह शरीर सुंदर व अव्याघाती (न किसी को रोकता है न ही किसी से रुकता है) होता है। इस शरीर से वे मुनि सर्वज्ञ के पास जाकर अपना संदेह निवारण करते हैं। पुनः औदारिक शरीर में आ जाते हैं। तदनंतर वह शरीर बिखर जाता है। यह सब कार्य अंतर्मुहूर्त्त में ही हो जाता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २४. क्या चतुःस्पर्शी भाषा वर्गणा सुनी जा सकती है?

उत्तर : चतुःस्पर्शी भाषा को सुना नहीं जा सकता। जो कुछ सुनाई देता है, वह चतुःस्पर्शी भाषा वर्गणा के अनुरूप परिणत अष्टस्पर्शी पुद्गल वर्गणा है।

प्रश्न २५ परमाणु में दो स्पर्श कौन से पाते हैं?

उत्तर : परमाणु में शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष इन चार स्पर्शों में दो स्पर्श पाते हैं। एक परमाणु में शीत-रुक्ष और उष्ण-स्निग्ध—इन दो युगलों में से एक युगल हो सकता है।

प्रश्न २६. चतुःस्पर्शी वर्गणा में चार स्पर्श निर्णीत हैं या आठ में से कोई चार पा सकते हैं?

उत्तर : चार स्पर्श निर्णीत ही होते हैं, अनिर्णीत नहीं। वे चार स्पर्श हैं—शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष। इनके संयोग से अवशिष्ट चार स्पर्श—लघु, गुरु, मृदु, कर्कश बनते हैं।

प्रश्न २७. क्या ऐसे भी पुद्गल हैं, जिन्हें देखकर जीव होने का भ्रम हो जाता है?

उत्तर : आगमों में ऐसी पुद्गल वर्गणा का भी उल्लेख है, जिन्हें देखकर जीव होने का भ्रम हो जाता है। यह भ्रम कभी-कभी सामान्य अवधिज्ञानी को भी हो सकता है। वर्तमान में वैज्ञानिक अनेक प्रकार के जो कीटाणु और जीवाणु बतलाते हैं, संभव है उनमें बहुत सारे तो पुद्गल वर्गणा ही हैं। उनका स्पंदन तथा बढ़ने आदि का क्रम जीव सदृश होता है, इसलिये जीव होने का भ्रम हो जाता है।

प्रश्न २८. लोक में जीव ज्यादा हैं या अजीव?

उत्तर : अजीव ज्यादा हैं। अजीव के एक भेद पुद्गल को ही लें, वह भी जीव से अनन्त गुणा अधिक हैं।

प्रश्न २९. क्या जीव और अजीव का भी कोई संबंध है?

उत्तर : परस्पर विरोधीधर्मा होते हुए भी जीव-अजीव दोनों का संबंध अनादिकालीन है। तिल और तेल की भांति दोनों का एकीभाव अनादिकाल से चालू है। इन दोनों के पृथक् होने का अर्थ है—आत्मा का मुक्त होना।

प्रश्न ३०. अजीव का जीव के लिये उपयोग है या जीव का अजीव के लिये उपयोग है?

उत्तर : संसारी जीवों के लिये अजीव का अनिवार्य उपयोग है। अजीव के सहारे ही वह जन्म-मरण करता है। पुद्गल के बिना संसारी जीव एक क्षण भी नहीं रह सकता। जीव का अजीव के लिए कोई उपयोग नहीं है।

प्रश्न ३१. अजीव का अजीव के लिए जीव का जीव के लिए क्या उपयोग है?

उत्तर : जीव-पुद्गल की गति, स्थिति, अवकाश व पर्याय बदलने में धर्मास्तिकाय आदि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

का स्पष्ट उपयोग है। पुद्गल का पुद्गल के लिए ह्रास-विकास में उपयोग यदा-कदा हो सकता है। जीव का जीव के लिए सीधा उपयोग माता-पिता तथा सचित्त योनि आदि के रूप में होता है। निमित्त के रूप में जीव का जीव के साथ और भी उपयोग माना गया है।

प्रश्न ३२. अनन्त प्रदेशी एक पुद्गल स्कंध न्यूनतम तथा अधिकतम कितना स्थान रोकता है?

उत्तर : अनन्त प्रदेशी एक पुद्गल स्कंध न्यूनतम एक आकाश प्रदेश को रोकता है और अधिकतम पूरे लोकाकाश को रोक लेता है, यह स्थिति केवली समुद्घात[1] के पांचवें समय में बनती है, जिसे अचित्त महास्कंध भी कहा जाता है।

प्रश्न ३३. अचित्त महास्कंध चतुःस्पर्शी होता है या अष्टस्पर्शी?

उत्तर : अचित्त महास्कंध चतुःस्पर्शी ही होता है।

३. पुण्य तत्त्व

प्रश्न १. पुण्य तत्त्व की परिभाषा क्या है?

उत्तर : उदीयमान शुभ कर्म पुद्गलों को पुण्य कहा जाता है। शुभ रूप में परिणत कर्म वर्गणा फल देते समय पुण्य कहलाती है। लोकभाषा में पवित्र कार्य को भी पुण्य कहा गया है।

प्रश्न २. पुण्य बंध के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : पुण्य बंध के नौ प्रकार हैं—ठाणं सूत्र के नौवें स्थान में पुण्य बंध के हेतु—कारण को पुण्य कहा है। उसके नौ प्रकार हैं—

(१) अन्न पुण्य — मुनि को अन्न-भोजन देने की शुभ प्रवृत्ति से बंधने वाले शुभ कर्म पुद्गल।

(२) पान पुण्य — मुनि को पानी देने की शुभ प्रवृत्ति से बंधने वाले शुभ कर्म पुद्गल।

(३) लयन पुण्य — मुनि को मकान देने की शुभ प्रवृत्ति से बंधने वाले शुभ कर्म पुद्गल।

१. समुद्घात का विस्तृत वर्णन देखें इसी अध्याय के मोक्ष विभाग (प्रश्न २१ से २७) में।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

(४) शयन पुण्य — मुनि को पाट-बाजोट आदि देने की शुभ प्रवृत्ति से बंधने वाले शुभ कर्म पुद्गल।

(५) वस्त्र पुण्य — मुनि को वस्त्र देने की शुभ प्रवृत्ति से बंधने वाले शुभ कर्म पुद्गल।

(६) मन पुण्य — मन की शुभ प्रवृत्ति से बंधने वाले शुभ कर्म पुद्गल।

(७) वचन पुण्य — वचन की शुभ प्रवृत्ति से बंधने वाले शुभ कर्म पुद्गल।

(८) काय पुण्य — शरीर की शुभ प्रवृत्ति से बंधने वाले शुभ कर्म पुद्गल।

(९) नमस्कार पुण्य — मुनि को नमस्कार करने की शुभ प्रवृत्ति से बंधने वाले शुभ कर्म पुद्गल।

प्रश्न ३. संयमी को अन्न आदि देने से पुण्य का बंध क्यों?

उत्तर : संयमी के सावद्य योग का सर्वथा त्याग होता है। उसका खाना-पीना आदि समस्त क्रियाएं निरवद्य हैं। संयमी को भोजन-पानी आदि देना उनके निरवद्य कार्य में सहयोगी बनना है। निरवद्य कार्य में सहयोगी बनना निरवद्य है। निरवद्य क्रिया में पुण्य का बंध माना गया है।

प्रश्न ४. असंयमी को देने में पुण्य क्यों नहीं?

उत्तर : असंयमी का खाना-पीना आदि कार्य सावद्य है। उन्हें भोजन आदि देना उसके असंयम को बढ़ावा देना है। असंयममूलक कार्य को बढ़ावा देना सावद्य है। सावद्य क्रिया में कभी पुण्य का बंध नहीं होता।

प्रश्न ५. संयमासंयमी (श्रावक) को देने में पुण्य क्यों नहीं?

उत्तर : श्रावक के शरीर को परिग्रह कहा है। उसके खाने-पीने की क्रिया को अव्रत माना है। उस क्रिया में सहयोगी बनने में पुण्य नहीं हो सकता।

प्रश्न ६. पुण्य बंध की कौन-कौन सी क्रिया है?

उत्तर : शुभ प्रवृत्ति मात्र पुण्य बंध का हेतु है। नौ प्रकार के पुण्य में मन, वचन, काय पुण्य में सारी प्रवृत्ति का समावेश हो गया है।

प्रश्न ७. शुभ प्रवृत्ति मात्र में निर्जरा मानी गई है और पुण्य बंध भी बतलाया है। क्या पुण्य और निर्जरा की क्रिया एक ही है?

उत्तर : पुण्य बंध की कोई स्वतंत्र क्रिया है ही नहीं। जिस क्रिया में निर्जरा होती है, उसी क्रिया से पुण्य का बंध होता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ८. बंधन क्षय (निर्जरा) और बंधन कारक (पुण्य), इन दोनों की निष्पत्ति एक ही क्रिया से कैसे संभव होगी?

उत्तर : प्रवृत्ति मात्र योग जन्य है। योग की उत्पत्ति द्वन्द्वात्मक है। नाम कर्म के उदय और अन्तराय कर्म के क्षय, क्षयोपशम से योग की उत्पत्ति होती है। शुभ योग में मोह का अनुदय (उपशम, क्षय और क्षयोपशम) और जुड़ जाता है। जब योग स्वयं द्वन्द्वात्मक है, तो उसकी निष्पत्ति भी द्वन्द्वात्मक है। उदय भाव से पुण्य का बंधन तथा क्षयोपशम, उपशम, क्षायक से निर्जरा होती है।

प्रश्न ९. पुण्य का स्वतंत्र बंध क्यों नहीं होता?

उत्तर : प्रवृत्ति दो प्रकार की है—शुभ और अशुभ। अशुभ से पाप का बंध होता है। शुभ से पुण्य का बंध तथा निर्जरा होना माना है। ऐसी कोई तीसरी प्रवृत्ति ही नहीं है, जिससे पृथक् पुण्य का बंध माना जा सके।

प्रश्न १०. अशुभ प्रवृत्ति से जब पृथक् पाप का बंध हो सकता है तब शुभ प्रवृत्ति से पृथक् पुण्य का बंध क्यों नहीं हो सकता?

उत्तर : अशुभ प्रवृत्ति में भी कुछ कर्म झड़ते हैं, किन्तु आत्मा की उज्ज्वलता न होने के कारण उसे निर्जरा नहीं माना। शुभ प्रवृत्ति में आत्मा की उज्ज्वलता होती है, इसलिए निर्जरा और पुण्य, इन दो को स्वीकार किया है।

प्रश्न ११. कोई ऐसा आगमिक प्रसंग भी है जिसमें निर्जरा और पुण्य दोनों का उल्लेख हो?

उत्तर : उत्तराध्ययन सूत्र (२९/१०) में कहा गया है—वन्दना करने से नीच गोत्र कर्म का क्षय और उच्च गोत्र कर्म का बंध होता है। यहां वन्दना की एक क्रिया में दो फलितों का स्पष्ट संकेत है।

प्रश्न १२. किसी व्यक्ति ने किसी व्यक्ति को भौतिक सहयोग दिया, उसे अगले जन्म में उसके द्वारा अनुकूल सहयोग मिल सकता है, ऐसे प्रसंग भी मिलते हैं। ऐसा पुण्य से ही संभव लगता है, फिर ऐसी क्रिया में पुण्य क्यों नहीं?

उत्तर : असंयमी को भौतिक सहयोग देना उसके साथ रागात्मक अनुबंध का निमित्त बनता है, किन्तु पुण्य का बंध नहीं होता। सहयोग और असहयोग की श्रृंखला लम्बी होती है। जन्म-जन्मान्तरों में यह क्रम चलता रहता है। राग का अनुबंध भी बहुधा पुण्य की भांति अनुकूलता की अनुभूति करा देता है, किन्तु राग स्वयं पाप है, उससे पाप का ही बंधन होता है।

प्रश्न १३. पुण्य बंध की हेतुभूत क्रियाओं का वर्णन आगमों में कहीं आता है?

उत्तर : ऐसे तो नौ पुण्य—पुण्य की हेतुभूत क्रियाओं का ही नाम है। अकर्कश (साता)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

वेदनीय कर्म, भद्र-कल्याणकारी कर्म बंध की क्रिया का उल्लेख भगवती सूत्र में आता है।

प्रश्न १४. पुण्य और पाप की कर्म वर्गणा अलग-अलग है या एक ही है?

उत्तर : कर्म वर्गणा के पुद्गल स्कंध अलग-अलग नहीं हैं। जिस प्रवृत्ति से कर्म बंधते हैं, वे उसके अनुरूप बन जाते हैं। शुभ लेश्या, शुभ योग से आकर्षित कर्म वर्गणा शुभ रूप में परिणत हो जाती है। अशुभ लेश्या, अशुभ योग से आकर्षित कर्म वर्गणा अशुभ रूप में परिणत हो जाती है। शुभ और अशुभ जिस रूप में कर्म बंधते हैं, उतने समय विशेष के लिये तदनुरूप कर्म शुभ और अशुभ फल देने वाले हो जाते हैं।

प्रश्न १५. क्या धर्म और पुण्य एक है?

उत्तर : धर्म और पुण्य एक नहीं, अलग-अलग हैं क्योंकि धर्म जीव है जबकि पुण्य अजीव है।

प्रश्न १६. पुण्य कर्मों की अवान्तर प्रकृतियां कितनी हैं?

उत्तर : पुण्य कर्मों की अवान्तर प्रकृतियां ४२ हैं—

१. वेदनीय कर्म की — १ प्रकृति — सात वेदनीय
२. आयुष्य कर्म की — ३ प्रकृति — देव, मनुष्य व तिर्यंच
३. नाम कर्म की — ३७ प्रकृति[1]
४. गोत्र कर्म की — १ प्रकृति — उच्च गोत्र

प्रश्न १७. पुण्यानुबंधी पुण्य की चौभंगी क्या आगमोक्त है?

उत्तर : पुण्यानुबंधी पुण्य की चौभंगी का आगमों में उल्लेख नहीं है, फिर भी आगम-विरुद्ध नहीं है। इसका वर्णन विशेषावश्यक भाष्य में इस प्रकार आता है—

१. पुण्यानुबंधी पुण्य — जिसके भोगने के बाद आगे पाप भोगना न पड़े। भरत चक्रवर्तीवत्—यहां सुख आगे सुख।
२. पुण्यानुबंधी पाप — जिसके भोगने के बाद आगे पाप भोगना पड़े। ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीवत्—यहां सुख आगे दुःख।
३. पापानुबंधी पुण्य — जिसके भोगने के बाद आगे पुण्य भोगने की स्थिति आ जाये। चण्डकौशिकवत्—यहां दुःख आगे सुख।

१. इनको विस्तार से देखें परिशिष्ट १ में।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४. पापानुबंधी पाप — जिसके भोगने के बाद आगे पाप भोगना पड़े। व्याघ्र आदि हिंसक पशु, पक्षीवत्—यहां भी दुःख और आगे भी दुःख।

प्रश्न १८. पापानुबंधी पाप की स्थिति में जीव का उत्थान कैसे संभव होगा?

उत्तर : पापानुबंधी पाप भोगने वाले प्राणी के असात वेदनीय कर्म का प्रबल उदय होने पर भी मोह कर्म का क्षयोपशम हो सकता है। इस स्थिति में उन जीवों के भी उत्थान की प्रक्रिया प्रारंभ हो सकती है।

प्रश्न १९. पुण्य और पुण्य प्रकृतियां एक है या दो?

उत्तर : दो। पुण्य उदीयमान अवस्था का नाम है जबकि प्रकृतियां बंध और उदय दोनों अवस्थाओं में है।

प्रश्न २०. पुण्य की कितनी स्थिति है?

उत्तर : पुण्य की स्थिति एक समय की है। जिस समय कर्म उदय में आता है, उसे ही पुण्य माना गया है। पुण्य-प्रकृति की स्थिति जघन्य दो समय तथा उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह करोड़ाकरोड़ सागर[1] की है।

प्रश्न २१. पुण्य की स्थिति एक समय की मानी गई है, फिर पन्द्रह करोड़ाकरोड़ सागरोपम स्थिति की संगति कैसे बैठेगी?

उत्तर : उदीयमान पुण्य वर्गणा की स्थिति तो एक समय की है। उदय के दूसरे क्षण कर्म झड़ जाते हैं, आत्मा से अलग हो जाते हैं, उस अपेक्षा से पुण्य की स्थिति एक समय की ली गई है। उदय से पूर्व बंध तत्त्व है और उदय के बाद पुद्गल द्रव्य अजीव तत्त्व है। एक प्रकृति विशेष की वर्गणा के संलग्न उदय में आने के कालमान की दृष्टि से ज्यादा से ज्यादा स्थिति पन्द्रह करोड़ाकरोड़ सागरोपम की कही गई है।

प्रश्न २२. नमस्कार पुण्य को अलग क्यों बताया गया है?

उत्तर : पुण्य के नौ प्रकारों में छह प्रकार तो मुनिजनों से संबन्धित व्यावहारिक प्रक्रिया के आधार पर किये गये हैं। अन्न-भोजन, पानी, मकान, शय्या, वस्त्र—ये पांचों प्रकार संयमी की व्यावहारिक अपेक्षाओं को पूरी करते हैं। इनके द्वारा मुनि के

१. इसको समझने के लिए एक उपनय दिया गया है—एक चार कोस का लंबा, चौड़ा और गहरा कुआ है, उसमें नवजात यौगलिक शिशु के केशों को असंख्य खंड कर भरा जाए, ये केश मनुष्य के केश के २४०१ भाग जितने सूक्ष्म हैं, इन केशों में से एक-एक केश-खंड प्रति सौ वर्ष के अंतर से निकालते-निकालते जितने काल में वह कुआ खाली हो, उतने काल को पल्य कहते हैं। ऐसे १० करोड़ाकरोड़ पल्य को एक सागर कहते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

संयम-पालन में सहयोगी बनना निर्जरा और पुण्य बंध का हेतु माना गया है। छठे प्रकार में संयम के प्रति आदर एवं आस्था प्रकट करने के लिए संयमी को नमस्कार करने से निर्जरा और पुण्य का बंध माना गया है। संयमी को आदर देना संयम को आदर देना है। पुण्य के नौ भेदों में इसकी महत्ता प्रदर्शित करने के लिये अलग भेद रखा गया है।

प्रश्न २३. पुण्य बंध की इच्छा करनी चाहिये या नहीं?

उत्तर : पुण्य की इच्छा करना भोगों की इच्छा करना माना गया है। पुण्य से भोग सामग्री मिलती है। उसे चाहना प्रकारांतर से काम-भोग की इच्छा करना ही है। आचार्य भिक्षु के शब्दों में 'पुण्य तणी वांछा करी, तिण वांछ्या काम नै भोग।' काम-भोग स्वयं पाप है। पाप की वृद्धि जिससे होती है, उसकी इच्छा करना पाप है। पुण्य बंधन है, बंधन की इच्छा करना पाप है, अतः पुण्य बंध की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

प्रश्न २४. पुण्य के लिए क्रिया करनी चाहिए या नहीं?

उत्तर : पुण्य के लिए क्रिया नहीं करनी चाहिए, क्रिया केवल निर्जरा के लिए ही की जाये। आगमों में निर्जरा के लिए ही क्रिया करने का विधान है। पुण्य तो अपने आप उस क्रिया से होने वाला प्रासंगिक तत्त्व है।

प्रश्न २५. पुण्य हेय है या उपादेय?

उत्तर : पुण्य भौतिक सुविधा देने वाला बंधन है। अध्यात्म दृष्टि से बंधन मात्र हेय है। पुण्य में भौतिक सुविधा देने की क्षमता है, किन्तु आत्म शान्ति की प्राप्ति इससे संभव नहीं है। पुण्य बंधन है, जड़ है, चेतना की पूर्ण निर्मलता में इसकी कोई उपादेयता नहीं है। इसके छूटने पर ही आत्मा मोक्ष को प्राप्त करता है।

प्रश्न २६. मोक्ष प्राप्ति में पुण्य साधक तत्त्व है या बाधक?

उत्तर : मोक्ष प्राप्ति में पुण्य साधक नहीं बाधक है। पुण्य स्वयं बंधन है, बंधन मोक्ष का साधक नहीं माना जा सकता। आचार्यों ने इसे सोने की बेड़ी कहा है। बेड़ी आखिर बेड़ी है, चाहे सोने की हो या लोहे की। इसी प्रकार बंधन आखिर बंधन है, चाहे पाप का हो या पुण्य का।

प्रश्न २७. मनुष्य-शरीर के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। मनुष्य-शरीर पुण्य से प्राप्त होता है, अतः पुण्य को मोक्ष का सहायक तत्त्व क्यों नहीं माना जा सकता?

उत्तर : मनुष्य-शरीर मोक्ष जाने में ही सहायक हो तब तो कुछ कहा जा सकता है, किन्तु मनुष्य-शरीर से नरक जाने के कर्म भी बांधे जा सकते हैं फिर उसे मात्र मोक्ष का

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

सहायक कैसे माना जा सकता है? वस्तुतः मोक्ष-गमन की सहायक निरवद्य क्रिया और नरक-गमन की सहायक सावद्य क्रिया है। इसलिए पुण्य मोक्ष का सहायक नहीं हो सकता।

४. पाप तत्त्व

प्रश्न १. पाप की परिभाषा क्या है?

उत्तर : उदीयमान अशुभ कर्म वर्गणा को पाप कहा जाता है। आत्मा इससे मलिन होती है, इसके उदय से कष्ट उठाती है।

प्रश्न २. पाप के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : पाप बंध हेतु को भी पाप कहा गया है। पाप के १८ प्रकार हैं—

१. प्राणातिपात	२. मृषावाद
३. अदत्तादान	४. मैथुन
५. परिग्रह	६. क्रोध
७. मान	८. माया
९. लोभ	१०. राग
११. द्वेष	१२. कलह
१३. अभ्याख्यान	१४. पैशुन्य
१५. परपरिवाद	१६. रति-अरति
१७. माया-मृषा	१८. मिथ्यादर्शन शल्य

अर्थ के भेद से इन्हें पापस्थान भी कहा गया है।

प्रश्न ३. प्राणातिपात पापस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव प्राण-वध करता है, उस कर्म को प्राणातिपात पाप स्थान कहा जाता है।

प्रश्न ४. पापस्थान और आश्रव में क्या अन्तर है?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव प्राण-वध करता है, उसको पापस्थान कहते हैं; जबकि प्राण-वध की क्रिया आश्रव है। प्राण-वध से जीव के सात-आठ कर्म बंधते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ५. अभ्याख्यान किसे कहा जाता है?

उत्तर : किसी पर झूठा आरोप लगाना अभ्याख्यान है। यह एक घिनौना कृत्य है, अतः इसे अलग रूप में बताया गया है।

प्रश्न ६. पैशुन्य किसे कहा जाता है?

उत्तर : चुगली, पीठ पीछे किसी की बुराई करना पैशुन्य है। यह एक प्रकार से विश्वासघात है, अतः अलग निदर्शित किया गया है।

प्रश्न ७. परपरिवाद किसे कहते हैं?

उत्तर : दूसरों की निन्दा करना परपरिवाद है। निन्दा एक जघन्य कार्य है, अतः इसे अलग पाप के रूप में लिया जाता है।

प्रश्न ८. रति-अरति किसे कहते हैं?

उत्तर : असत्प्रवृत्ति के प्रति आकर्षण व सत्प्रवृत्ति के प्रति उदासीनता को क्रमशः रति-अरति कहते हैं।

प्रश्न ९. मृषावाद पाप है, फिर माया-मृषा अलग क्यों हैं?

उत्तर : झूठ मृषावाद है। माया युक्त झूठ, जिसे सुनने वाले को सच जैसा लगे, उसे माया-मृषा कहा है। अत्यन्त क्लिष्ट भावना के बिना यह पाप नहीं किया जा सकता, अतः इसका पृथक् ग्रहण किया गया है।

प्रश्न १०. मिथ्यादर्शन को शल्य क्यों कहा गया है?

उत्तर : शल्य भीतरी घाव को कहते हैं। उसका ठीक हो पाना बहुत कठिन है। जब तक शरीर का भीतरी घाव ठीक नहीं होता तब तक शरीर स्वस्थ नहीं बनता। चाहे कितना ही उपचार क्यों न कर लें, शरीर पुष्ट नहीं बनता। इसी तरह मिथ्यादर्शन शल्य आत्मविकास में घाव के समान है। इसके होते हुए कितनी भी क्रिया की जाये, उसमें पूर्णता नहीं आ सकती, अतः इसे शल्य कहा गया है।

प्रश्न ११. घातिक कर्म पाप की प्रकृति है या पुण्य की?

उत्तर : घातिक कर्म पाप की प्रकृति है।[1]

प्रश्न १२. क्या अधर्म और पाप एक है?

उत्तर : अधर्म और पाप एक नहीं, अलग-अलग हैं क्योंकि अधर्म जीव है जबकि पाप अजीव है।

---

१. विस्तार से देखें पांचवें अध्याय 'कर्मबोध' के 'प्रकृति व करण' विभाग में।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न १३. पाप और पापी एक हैं या दो?

उत्तर : दो। पाप अजीव है, पापी जीव है।

प्रश्न १४. अठारह पाप का सेवन छह में कौन, नौ में कौन?

उत्तर : छह में जीव, नौ में दो—जीव, आश्रव।

प्रश्न १५. अठारह पाप का प्रत्याख्यान छह में कौन, नौ में कौन?

उत्तर : छह में जीव, नौ में दो—जीव, संवर।

प्रश्न १६. पाप की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति क्या है?

उत्तर : पाप की स्थिति एक समय की है। जिस समय कर्म उदय में आता है, उसे ही पाप माना गया है। पाप-कर्मप्रकृति की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट-सित्तर करोड़ाकरोड़[1] सागर है।

प्रश्न १७. पाप का उत्कृष्ट अबाधाकाल कितना है?

उत्तर : पाप की प्रकृति का उत्कृष्ट अबाधाकाल ७००० वर्ष का होता है। बंधन के समय से सात हजार वर्ष तक कर्म अनुदय स्थिति में रह सकते हैं।

प्रश्न १८. पाप की अवान्तर प्रकृतियां कितनी हैं?

उत्तर : कर्मों की १४८ प्रकृतियों में १०६ प्रकृतियां पाप की हैं।[2]

प्रश्न १९. क्या पाप का स्वतंत्र बंध माना जा सकता है?

उत्तर : वस्तुतः पुण्य व पाप दोनों का बंध स्वतंत्र नहीं है। दोनों ही तत्त्व सत् व असत् क्रिया के फलित हैं। स्वतंत्र अस्तित्व है धर्म और अधर्म का। निर्जराजन्य धर्म के साथ पुण्य का तथा अधर्म मात्र के साथ पाप का बंध जुड़ा हुआ है।

प्रश्न २०. क्या पाप से कोई भारी भी होता है?

उत्तर : लोक भाषा में ज्यादा कर्म करने वाले को भारीकर्मा कहते हैं। तत्त्वतः पाप या पुण्य के कर्म पुद्गल चतुःस्पर्शी होने के कारण हल्के-भारी नहीं होते।

प्रश्न २१. पाप कर्म में चार स्पर्श कौन से हैं?

उत्तर : पाप कर्म में शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष—ये चार स्पर्श होते हैं।

प्रश्न २२. कुछ परम्पराएं पुण्य-पाप को तत्त्व नहीं मानती, हम क्यों मानते हैं?

उत्तर : दिगम्बर परम्परा में पुण्य, पाप को तत्त्व के रूप में स्वीकार नहीं किया। वे इन्हें

---

१. करोड़ की संख्या को करोड़ की संख्या से गुणा करने पर जो गुणनफल आता है उसे करोड़ाकरोड़ कहते हैं।

२. नामोल्लेखपूर्वक विस्तार से देखें परिशिष्ट १ में।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बंध के अंतर्गत ही मानते हैं। जबकि श्वेताम्बर परम्परा में इन्हें स्वतंत्र तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। मूलतः तत्त्व दो हैं—जीव, अजीव। शेष दोनों का विस्तार है।

प्रश्न २३. पाप बंध के मुख्य हेतु क्या हैं?

उत्तर : असत् प्रवृत्ति मात्र पापबंध का हेतु है। प्रत्येक कर्म प्रकृति बंध[1] के हेतु पृथक्-पृथक् भी हैं।

प्रश्न २४. पाप का बंध कितने गुणस्थान तक होता है?

उत्तर : दसवें गुणस्थान तक पाप का बंध होता है। आगे के तीन गुणस्थानों में केवल पुण्य का ही बंध होता है। चौदहवां गुणस्थान अबंधक है। वहां किसी कर्म का बंध नहीं होता।

५. आश्रव तत्त्व

प्रश्न १. आश्रव की क्या परिभाषा है?

उत्तर : जिन आत्म परिणामों से कर्मों का आगमन होता है, उसे आश्रव कहते हैं।

प्रश्न २. आश्रव के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : आश्रव के मुख्य पांच प्रकार हैं—

१. मिथ्यात्व—विपरीत श्रद्धा
२. अव्रत—खुलावट—अत्याग भाव
३. प्रमाद—अनुत्साहभाव
४. कषाय—अन्तर् उत्तप्ति
५. योग—मन, वचन, काया की प्रवृत्ति

प्रश्न ३. मिथ्यात्व के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : मिथ्यात्व के पांच प्रकार हैं—

१. आभिग्रहिक — अपनी मान्यता को असत्य समझ लेने पर भी उसे पकड़े रहना। यह दीर्घकालिक होता है।

२. अनाभिग्रहिक — गुण-दोष की परीक्षा किये बिना सभी विचारों या मंतव्यों को समान समझना।

१. इसका नामोल्लेखपूर्वक विवेचन इसी अध्याय के बंध विभाग (प्रश्न १६) में।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३. आभिनिवेशिक— अपनी मान्यता को असत्य समझ लेने पर भी उसे पकड़े रहना। यह अल्पकालिक होता है।

४. अनाभोगिक — ज्ञान के अभाव में या मोह की प्रबलतम अवस्था के कारण गलत तत्त्व को पकड़े रहना।

५. सांशयिक — वैचारिक अस्थिरता व संदेह की स्थिति में गलत तत्त्व को सही मानना।

धर्म के क्षेत्र में जो मूलभूत बातें बताई गई हैं उन्हें विपरीत समझने की अपेक्षा से मिथ्यात्व के दस प्रकार भी बताये गये हैं—

१. धर्म को अधर्म समझना
२. अधर्म को धर्म समझना
३. मार्ग को कुमार्ग समझना
४. कुमार्ग को मार्ग समझना
५. जीव को अजीव समझना
६. अजीव को जीव समझना
७. साधु को असाधु समझना
८. असाधु को साधु समझना
९. मुक्त को अमुक्त समझना
१०. अमुक्त को मुक्त समझना

प्रश्न ४. कषाय के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : कषाय के चार प्रकार हैं—क्रोध, मान, माया, लोभ।

इनके सोलह प्रकार भी हैं— अनन्तानुबंधी — क्रोध, मान, माया, लोभ
अप्रत्याख्यानी — क्रोध, मान, माया, लोभ
प्रत्याख्यानी — क्रोध, मान, माया, लोभ
संज्वलन — क्रोध, मान, माया लोभ

प्रश्न ५. योग आश्रव के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : योग आश्रव के शुभ-अशुभ—इन दो भेदों के अतिरिक्त पन्द्रह भेद भी बताये गये हैं—

१. प्राणातिपात आश्रव
२. मृषावाद आश्रव
३. अदत्तादान आश्रव
४. मैथुन आश्रव
५. परिग्रह आश्रव
६. श्रोत्रेन्द्रिय प्रवृत्ति आश्रव
७. चक्षुरिन्द्रिय प्रवृत्ति आश्रव
८. घ्राणेन्द्रिय प्रवृत्ति आश्रव
९. रसनेन्द्रिय प्रवृत्ति आश्रव
१०. स्पर्शनेन्द्रिय प्रवृत्ति आश्रव
११. मन प्रवृत्ति आश्रव
१२. वचन प्रवृत्ति आश्रव
१३. काय प्रवृत्ति आश्रव
१४. भण्डोपकरण रखना आश्रव
१५. सूचि-कुशाग्र मात्र दोष सेवन आश्रव

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ६. मिथ्यात्व आश्रव कितने गुणस्थान तक है?

उत्तर : पहले और तीसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व आश्रव है। दूसरे व चौथे गुणस्थान में मिथ्यात्व आश्रव सक्रिय नहीं है। शेष दस गुणस्थानों में मिथ्यात्व नहीं है।

प्रश्न ७. मिथ्यात्व आश्रव की जनक प्रकृतियां कौन-कौन सी हैं?

उत्तर : मिथ्यात्व आश्रव की जनक प्रकृतियां सात हैं—

अनन्तानुबंधी क्रोध	सम्यक्त्व मोहनीय
अनन्तानुबंधी मान	मिथ्यात्व मोहनीय
अनन्तानुबंधी माया	मिश्र मोहनीय
अनन्तानुबंधी लोभ	

प्रश्न ८. अव्रत आश्रव कितने गुणस्थान तक है?

उत्तर : पांचवें गुणस्थान तक अव्रत आश्रव निरन्तर विद्यमान है। इसमें जीव के प्रतिसमय कर्मों का आगमन होता रहता है।

प्रश्न ९. अव्रत आश्रव की जनक प्रकृतियां कौन-कौन सी हैं?

उत्तर : अव्रत आश्रव की जनक प्रकृतियां आठ हैं—

अप्रत्याख्यानी क्रोध	प्रत्याख्यानी क्रोध
अप्रत्याख्यानी मान	प्रत्याख्यानी मान
अप्रत्याख्यानी माया	प्रत्याख्यानी माया
अप्रत्याख्यानी लोभ	प्रत्याख्यानी लोभ

प्रश्न १०. प्रमाद आश्रव कितने गुणस्थान तक है?

उत्तर : प्रमाद आश्रव छठे गुणस्थान तक रहता है।

प्रश्न ११. प्रमाद आश्रव की जनक प्रकृतियां कौन-कौन सी हैं?

उत्तर : छठे और सातवें गुणस्थान में कर्म प्रकृतियां एक जितनी हैं, अतः जनक प्रकृतियों का स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं मिलता। वैसे संज्वलन कषाय चतुष्क व नौ नो कषाय की प्रकृतियां ही इसकी जनक हैं। छठे गुणस्थान में जिस मात्रा में उदय रहता है, उसमें न्यूनता आने पर ही अप्रमत्तता आती है।

प्रश्न १२. कषाय आश्रव कितने गुणस्थान तक है?

उत्तर : कषाय आश्रव दसवें गुणस्थान तक है।

प्रश्न १३. कषाय आश्रव की जनक प्रकृतियां कौन-कौन सी हैं?

उत्तर : कषाय आश्रव की जनक प्रकृतियां सोलह हैं—

अनन्तानुबंधी	क्रोध, मान, माया, लोभ
अप्रत्याख्यानी	क्रोध, मान, माया, लोभ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रत्याख्यानी	क्रोध, मान, माया, लोभ
संज्वलन	क्रोध, मान, माया, लोभ

प्रश्न १४. योग आश्रव कितने गुणस्थान तक है?

उत्तर : योग आश्रव तेरहवें गुणस्थान तक रहता है।

प्रश्न १५. योग आश्रव की जनक प्रकृतियां कौन-कौन सी हैं?

उत्तर : योग आश्रव की जनक प्रकृति एक शरीर नामकर्म की है। अशुभ योग में चारित्र मोहनीय कर्म की प्रकृतियां सहायक बनती हैं।

प्रश्न १६. आश्रव में भाव कौन सा है?

उत्तर : उदय और पारिणामिक—ये दो भाव आश्रव में होते हैं। कर्मबंध की दृष्टि से यहां उदय भाव ही लिया गया है।

प्रश्न १७. शुभ योग केवल उदय भाव ही है या क्षायक, क्षयोपशम भाव भी है?

उत्तर : शुभ योग भाव पांच हैं—मोहकर्म का उपशम, क्षायक, क्षयोपशम; नामकर्म का उदय; अंतराय कर्म का क्षय, क्षयोपशम तथा पारिणामिक भाव। ये पांचों भाव शुभ योग में हैं। निर्जरा की अपेक्षा से इनकी संगति बैठती है।

प्रश्न १८. योग चंचल है। उपशम शमन को कहते हैं, फिर योग में उपशम भाव कैसे ?

उत्तर : योग की शुभता में मोह कर्म का अनुदय आवश्यक है। वह अनुदय उपशम, क्षायक, क्षयोपशम—तीनों में से किसी भी रूप में हो सकता है, योग की चंचलता से इसका सम्बन्ध नहीं है। इसका संबंध है मात्र शुभता से।

प्रश्न १९. योग की उत्पत्ति का तात्त्विक आधार क्या है?

उत्तर : अन्तराय कर्म का क्षय, क्षयोपशम और नामकर्म के उदय से योग उत्पन्न होता है।

प्रश्न २०. आश्रव आत्म परिणाम को कहते हैं या आकर्षित होने वाली कर्म वर्गणा को ?

उत्तर : आत्म परिणाम को ही आश्रव कहा जाता है, कर्म वर्गणा को नहीं। आश्रव जीव है जबकि कर्म वर्गणा अजीव है। इन दोनों का अंतर समझने के लिए आचार्य भिक्षु द्वारा प्रदत्त दृष्टान्त मननीय है। तालाब के नाले, हवेली के द्वार तथा नौका के छेद सदृश आश्रव हैं। नाले में से आने वाले पानी, द्वार में से आने वाले आदमी तथा नौका के छेद में से घुसने वाले पानी के सदृश कर्म वर्गणा है।

प्रश्न २१. मनोवर्गणा, वचनवर्गणा, कायवर्गणा को पौद्गलिक माना गया है और

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मन, वचन, काया को योग आश्रव कहा गया है इसलिए क्या आश्रव अजीव नहीं है?

उत्तर : मन, वचन, काया की वर्गणा पौद्गलिक है, किन्तु यही योग नहीं है। मन, वचन, काया का योग आत्म प्रवृत्ति जुड़ने से होता है। वर्गणा द्रव्य मन, द्रव्य वचन, द्रव्य काया का योग हो सकती है, किन्तु भाव योग आत्मा के संयोग से ही होता है, वही योग आश्रव है।

प्रश्न २२. क्या आगम प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि आश्रव जीव है?

उत्तर : आगमों में जो प्रसंग आते हैं, उनके आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि आश्रव जीव है। भगवती सूत्र में भाव लेश्या को अरूपी व जीव कहा गया है, इस आधार पर कहा जा सकता है कि भाव लेश्या आश्रव है और वह जीव है।

अनुयोगद्वार में जीवोदय निष्पन्न तेतीस बोल बताये गये हैं। इनमें छह लेश्याएं, चार कषाय, मिथ्या दृष्टि, अविरति और सयोगिता भी अन्तर्निहित है, अतः ये सब जीव हैं। चार कषाय अर्थात् कषाय आश्रव, मिथ्या दृष्टि अर्थात् मिथ्यात्व आश्रव, अविरति अर्थात् अव्रत आश्रव, सयोगिता अर्थात् योग आश्रव है। इस तरह आश्रव जीव सिद्ध होता है।

भगवती सूत्र में आठ आत्माएं बताई गई हैं, उनमें कषाय आत्मा व योग आत्मा का उल्लेख है। कषाय आत्मा—कषाय आश्रव है। योग आत्मा—योग आश्रव है। जो कषाय व योग आश्रव को अजीव मानते हैं उनके मत से कषाय आत्मा और योग आत्मा अजीव होनी चाहिए पर वे उपयोग आत्मा, ज्ञान आत्मा आदि की भांति ही जीव हैं, अजीव नहीं, अतः कषाय आश्रव और योग आश्रव भी जीव है।

लेश्या, मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग—इनके संबंध में जो विवेचन है उससे स्पष्ट है कि योग आदि पांचों कर्म आगमन के हेतु होने से आश्रव हैं। उन्हें आगमों में आत्मा, जीव-परिणाम आदि संज्ञाओं में अभिहित किया है। इस आधार पर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि आश्रव जीव-परिणाम है, जीव-स्वरूप है, अतः जीव है।

प्रश्न २३. क्या आश्रव का आदि-अन्त है?

उत्तर : काल की दृष्टि से आश्रव के तीन विकल्प हो सकते हैं—

१. अनादि अनन्त — अभव्य की अपेक्षा से।

२. अनादि सान्त — मोक्षगामी भव्य की अपेक्षा से।

३. सादि सान्त — प्रतिपाति सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २४. आश्रव सावद्य है या निरवद्य?

उत्तर : आश्रव सावद्य एवं निरवद्य दोनों है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय आश्रव सावद्य हैं। योग के दो प्रकार हैं—शुभ योग और अशुभ योग। उनमें अशुभ योग सावद्य है। शुभ योग से निर्जरा होती है, इस दृष्टि से निरवद्य है।

प्रश्न २५. कर्म और कर्मों का कर्ता एक है या दो?

उत्तर : दो। कर्म अजीव है जबकि कर्मों का कर्ता जीव है और वह आश्रव है।

प्रश्न २६. आश्रव हेय है या उपादेय?

उत्तर : आश्रव हेय है क्योंकि यह कर्म आने का द्वार है, निमित्त है। इसके माध्यम से ही कर्म आता है, अतः आश्रव को आचार्यों ने भव-हेतुक कहा है। संसार में रहने का एकमात्र हेतु यही है।

प्रश्न २७. आश्रव तत्त्व मोक्षगमन में सहायक है या बाधक?

उत्तर : आश्रव बंधनकारक तत्त्व है इसलिए यह मोक्ष की आराधना में सहायक नहीं, बाधक तत्त्व है।

६. संवर तत्त्व

प्रश्न १. संवर की क्या परिभाषा है?

उत्तर : कर्मों को रोकने वाले आत्म परिणाम (आश्रव निरोध) को संवर कहते हैं। आत्मा के वे परिणाम जिनसे कर्म वर्गणा का अवरोध होता हो, उसे संवर कहा जाता है।

प्रश्न २. संवर के कितने प्रकार हैं?

उत्तर :. संवर के पांच प्रकार हैं—१. सम्यक्त्व संवर, २. व्रत संवर, ३. अप्रमाद संवर ४. अकषाय संवर, ५. अयोग संवर।

प्रश्न ३. क्या संवर के और भी प्रकार हैं?

उत्तर : संवर के पन्द्रह प्रकार और भी हैं—

१. प्राणातिपात विरमण संवर	२. मृषावाद विरमण संवर
३. अदत्तादान विरमण संवर	४. अब्रह्मचर्य विरमण संवर
५. परिग्रह विरमण संवर	६. श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह संवर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

७. चक्षुरिन्द्रिय निग्रह संवर ८. घ्राणेन्द्रिय निग्रह संवर
९. रसनेन्द्रिय निग्रह संवर १०. स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह संवर
११. मनो निग्रह संवर १२. वचन निग्रह संवर
१३. काय निग्रह संवर १४. भण्डोपकरण रखने में अयत्ना न करना संवर
१५. सूचि कुशाग्र मात्र दोष सेवन न करना संवर।
इसके अधिकतम भेद ५७ बताए गये हैं।

प्रश्न ४. प्राणातिपात विरमण संवर आदि पन्द्रह भेद किसके अन्तर्गत आते हैं?

उत्तर : प्राणातिपात विरमण संवर आदि पन्द्रह भेद व्रत संवर के अन्तर्गत आते हैं। वैसे इनके प्रतिपक्षी प्राणातिपात आश्रव आदि योग आश्रव के भेद हैं क्योंकि ये प्रवृत्ति रूप हैं। प्रवृत्ति करना योग आश्रव है। इसके प्रत्याख्यान से अयोग संवर इसलिए नहीं होता कि दोनों योग शुभ और अशुभ के सर्वथा निरोध होने से ही अयोग संवर होता है। अशुभ प्रवृत्ति छठे गुणस्थान में सर्वथा रुक जाती है, जबकि शुभ प्रवृत्ति तेरहवें गुणस्थान तक रहती है। उनका पूर्ण निरोध चौदहवें गुणस्थान में ही होता है, अतः प्राणातिपात आदि के प्रत्याख्यान में व्रत संवर की मुख्यता रहती है। अपेक्षा भेद से वहां आंशिक अयोग संवर माना गया है।

प्रश्न ५. सम्यक्त्व संवर कौन से गुणस्थान से प्रारम्भ होता है?

उत्तर : सम्यक्त्व संवर पांचवें गुणस्थान से प्रारम्भ होता है। यह संवर चौदहवें गुणस्थान तक चलता है। वैसे सम्यक्त्व दूसरे और चौथे गुणस्थान में होती है।

प्रश्न ६. चौथे गुणस्थान में क्षायक सम्यक्त्व भी हो सकती है और क्षायक सम्यक्त्वी के मिथ्यात्व का पाप नहीं लगता, फिर सम्यक्त्व संवर वहां क्यों नहीं होता?

उत्तर : अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ के क्षयोपशम के बिना संवर की निष्पत्ति नहीं होती। चौथे गुणस्थान में अप्रत्याख्यानी कषाय चतुष्क का उदय रहता है, अतः क्षायक सम्यक्त्व होने पर भी संवर नहीं होता।

प्रश्न ७. सिद्धों में संवर क्यों नहीं माना गया?

उत्तर : सिद्ध अकर्मा है, कृतकार्य है। उन्हें किसी प्रकार के त्याग की अपेक्षा नहीं रहती, इसलिए उज्ज्वलता होते हुए भी संवर नहीं माना।

प्रश्न ८. व्रत संवर कौन से गुणस्थान से प्रारम्भ होता है?

उत्तर : व्रत संवर छठे गुणस्थान से प्रारम्भ होता है। अव्रत का पूर्ण अवरोध होने पर ही छठे गुणस्थान की प्राप्ति होती है। यह चौदहवें गुणस्थान तक रहता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ९. पांचवें गुणस्थान में संवर तो होता है, फिर व्रत संवर क्यों नहीं?

उत्तर : पांचवें गुणस्थान में सम्यक्त्व संवर है। देश व्रत पांचवें गुणस्थान में होता है। वहां व्रत संवर आंशिक रूप से जरूर है, किन्तु सम्पूर्ण नहीं होने से व्रत संवर नहीं माना गया है।

प्रश्न १०. अप्रमाद संवर कौन से गुणस्थान से प्रारम्भ होता है?

उत्तर : अप्रमाद संवर सातवें गुणस्थान से प्रारम्भ हो जाता है, जो चौदहवें तक रहता है।

प्रश्न ११. अकषाय संवर कौन से गुणस्थान से प्रारम्भ होता है?

उत्तर : ग्यारहवें गुणस्थान से अकषाय संवर प्रारम्भ होता है। वीतराग अवस्था अकषाय संवर में ही मानी गई है।

प्रश्न १२. अयोग संवर कौन से गुणस्थान से प्रारम्भ होता है?

उत्तर : अयोग संवर केवल चौदहवें गुणस्थान में होता है तथा संपूर्ण संवर की अवस्था वही है।

प्रश्न १३. अशुभ योग तो सातवें गुणस्थान में रुक जाता है, फिर अयोग संवर चौदहवें गुणस्थान में ही क्यों?

उत्तर : आंशिक संवर का यहां उल्लेख नहीं है, इसीलिए तो पांचवें गुणस्थान में व्रत संवर ग्रहण नहीं किया गया। नौवें व दसवें गुणस्थान में कषाय की अत्यल्पता के बावजूद अकषाय संवर नहीं माना। इसी तरह सातवें से तेरहवें गुणस्थान तक आंशिक अयोग संवर होते हुए भी संवर नहीं माना है। एक चौदहवें गुणस्थान में ही पूर्ण अयोग संवर सधता है।

प्रश्न १४. मिथ्यात्व अवस्था में निर्जरा होती है। मिथ्यात्वी को सत्क्रिया की दृष्टि से मोक्ष का देश आराधक माना गया है, फिर वहां संवर क्यों नहीं होता?

उत्तर : संवर होने में चारित्र मोहनीय की आठ प्रकृतियों का क्षयोपशम अनिवार्य है। अनन्तानुबंधी कषाय चतुष्क तथा अप्रत्याख्यानी कषाय चतुष्क का क्षयोपशम होने पर ही संवर की निष्पत्ति होती है। मिथ्यात्व अवस्था में इन आठ प्रकृतियों का उदय रहता है, अतः मिथ्यात्व दशा में संवर नहीं होता।

प्रश्न १५. संवर की स्थिति कितनी?

उत्तर : संवर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट कुछ कम एक करोड़ पूर्व[1] की है।

---

१. ७० लाख, ५६ हजार वर्ष को १ करोड़ से गुणा करने पर ७०,५६०,०००,०००,०० वर्षों का एक पूर्व होता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न १६. क्या संवर चारों गतियों में होता है?

उत्तर : देव और नरक, इन दो गतियों में संवर नहीं होता। मनुष्य और तिर्यंच, इन दो गतियों में संवर तत्त्व की निष्पत्ति हो सकती है।

प्रश्न १७. क्या सभी तिर्यंचों में संवर की निष्पत्ति हो सकती है?

उत्तर : नहीं, केवल समनस्क तिर्यंचों में ही संवर संभाव्य है।

प्रश्न १८. देवता व नारक में संवर क्यों नहीं होता?

उत्तर : देवता व नारक में अप्रत्याख्यानी कषाय चतुष्क का निरन्तर उदय रहता है। उसके उदय रहते संवर नहीं होता।

प्रश्न १९. समनस्क तिर्यंचों में निसर्ग सम्यक्त्व होती है या अधिगम सम्यक्त्व[1]?

उत्तर : तिर्यंचों में अधिगम सम्यक्त्व मानी गई है। वहां किसी न किसी निमित्त से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

प्रश्न २०. तिर्यंचों के सम्यक्त्व प्राप्ति में कौन-कौन से निमित्त हो सकते हैं?

उत्तर : तिर्यंचों के सम्यक्त्व प्राप्ति के तीन हेतु माने गये हैं—

१. तीर्थंकरों, सर्वज्ञों तथा मुनियों के उपदेश से।
२. पूर्व जन्म के मित्र देव की प्रेरणा से।
३. जाति स्मरण ज्ञान की प्राप्ति से।

मनुष्य लोक में तीनों हेतुओं से तथा मनुष्य लोक से बाहर अंतिम दो हेतुओं से सम्यक्त्व की प्राप्ति हो सकती है। उन्हीं के संवर हो सकता है।

प्रश्न २१. क्या सभी सम्यक्त्वी मनुष्यों के संवर होता है?

उत्तर : सभी सम्यक्त्वी मनुष्यों के संवर नहीं होता। तीस अकर्म भूमि के यौगलिक सम्यक्त्वी तो हो सकते हैं, किन्तु श्रावक व साधु नहीं बन सकते। अतः उनमें संवर तत्त्व नहीं होता। गृहस्थ अवस्था में तीर्थंकर, चक्रवर्ती[2], बलदेव[3], वासुदेव[4] को पांचवां गुणस्थान नहीं आता, इसलिए एक निश्चित कालमान तक इनमें संवर होता ही नहीं। शेष मनुष्यों में संवर हो सकता है।

---

१. सम्यक्त्व का विस्तार से वर्णन देखें तीसरे अध्याय 'मार्गबोध' के 'दर्शन' विभाग में।
२. छह खंड के सम्राट्, मनुष्यों में सर्वाधिक ऋद्धि वाले।
३. वासुदेव के बड़े भाई।
४. तीन खंड के सम्राट्।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २२. संवर जीव कैसे है?

उत्तर : संवर सामायिक चारित्र है। आगमों में सामायिक को आत्मा कहा है। आठ आत्माओं में चारित्र का समावेश है, अतः संवर जीव है।

प्रश्न २३. मोक्ष में चारित्र नहीं माना है। मोक्ष जाते समय चारित्र छूट जाता है, फिर क्या मोक्ष प्राप्ति में चारित्र हेय हो गया?

उत्तर : चारित्र आश्रव अवरोधक आत्म परिणाम है। मोक्ष में आश्रव नहीं है, अतः उसका अवरोधक संवर भी नहीं है किन्तु उसकी आत्म-उज्ज्वलता उसमें विद्यमान है।

प्रश्न २४. अल्पाबहुत्व की अपेक्षा से संवर युक्त जीव ज्यादा हैं या निर्जरा युक्त जीव ?

उत्तर : संवर युक्त जीव असंख्य हैं और निर्जरा युक्त जीव अनन्त हैं। संवर दस गुणस्थानों में होता है, जबकि निर्जरा चौदह गुणस्थानों में ही होती है अतः निर्जरा युक्त जीव ज्यादा है।

प्रश्न २५. आगमों में समागत पंडित, बाल और बाल पंडित का संबंध संवर से है या निर्जरा से?

उत्तर : इनका संबंध संवर से है, निर्जरा से नहीं। पंडित का संबंध व्रत संवर से है। यह छठे से चौदहवें गुणस्थान तक होता है। पांचवां गुणस्थान बाल पंडित होता है क्योंकि इसमें व्रत-अव्रत दोनों होते हैं। बाल पंडित में सम्यक्त्व संवर होता है। पहले से चौथे गुणस्थान को बाल कहा है। व्रत का सर्वथा अभाव होने से बाल कहा है। इसी कारण संवर नहीं होता।

प्रश्न २६. संवर औदारिक शरीर में ही होता है या अन्य शरीर में भी?

उत्तर : तैजस् व कार्मण शरीर संसारी जीवों के सदा रहता ही है। स्थूल शरीरों में जन्मना औदारिक शरीर वालों के संवर हो सकता है। जन्मना वैक्रिय शरीर वालों (देव, नारक) के संवर नहीं होता, किन्तु उत्तर वैक्रियकृत[1] शरीर वालों के (मनुष्य एवं गर्भज तिर्यंच) के संवर हो सकता है। आहारक शरीर वालों के संवर होता है।

१. अपने मूल स्वरूप को छोटा, बड़ा करने तथा विविध आकृतियों में रूपांतरित करने की प्रक्रिया।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

७. निर्जरा तत्त्व

प्रश्न १. निर्जरा की क्या परिभाषा है?

उत्तर : तपस्या आदि के द्वारा कर्मों के अलग होने से जो आत्मा की आंशिक उज्ज्वलता होती है, उसे निर्जरा कहा जाता है।

प्रश्न २. निर्जरा के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : आंशिक उज्ज्वलता निर्जरा है उसका कोई प्रकार नहीं होता। प्रकाश प्रकाश ही होता है उसका कोई भेद नहीं होता। तदपि कारण को कार्य मानकर निर्जरा के दो भेद किये गये हैं—

१. बाह्य २. आभ्यंतर

बाह्य के छह प्रकार हैं—

१. अनशन २. ऊनोदरी
३. भिक्षाचरी ४. रस परित्याग
५. कायक्लेश ६. प्रतिसंलीनता

आभ्यंतर के भी छह प्रकार हैं—

१. प्रायश्चित्त २. विनय
३. वैयावृत्त्य ४. स्वाध्याय
५. ध्यान ६. व्युत्सर्ग[1]

प्रश्न ३. उजला लेखे, करणी लेखे निर्जरा का क्या स्वरूप है?

उत्तर : कर्म निर्जरण से जो आत्म उज्ज्वलता प्राप्त होती है, उसे उजला लेखे निर्जरा कहते हैं। उस उज्ज्वलता से भी कई आत्मगुण, आत्मशक्ति प्रकट होती है, उनका मात्र प्रकट रूप उजला लेखे निर्जरा की उपलब्धि मानी गई है। इससे कोई क्रिया नहीं होती। जिन आत्मगुणों की क्रियावत्ता बाद में रहती है, उन्हें करणी लेखे निर्जरा कहा जाता है।

प्रश्न ४. निर्जरा से प्राप्त बत्तीस आत्मगुणों (क्षयोपशम) में कितने उजला लेखे निरवद्य हैं और कितने करणी लेखे?

उत्तर : निर्जरा से प्राप्त बत्तीस गुणों में चार चारित्र, देशव्रत तथा सम्यग् दृष्टि—ये छह

१. विस्तार से देखें 'धर्मबोध' अध्याय के 'तपधर्म' विभाग में।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उजला व करणी लेखे—दोनों प्रकारों से निरवद्य हैं, शेष छब्बीस उजला लेखे निरवद्य हैं।[1]

प्रश्न ५. चौदहवें गुणस्थान में कौन-सी निर्जरा मानी गई है?

उत्तर : चौदहवें गुणस्थान में उजला लेखे निर्जरा होती है, करणी लेखे नहीं।

प्रश्न ६. चौदहवें गुणस्थान में अपूर्व निर्जरा मानी गई है, कैसे?

उत्तर : यह निर्जरा अन्तिम है, जिसकी परिणति मोक्ष के रूप में होती है। इस दृष्टि से निर्जरा को अपूर्व व सर्वश्रेष्ठ माना है।

प्रश्न ७. क्या निर्जरा के और भी भेद हैं?

उत्तर : निर्जरा के दो भेद और भी हैं—

१. सकाम २. अकाम

प्रश्न ८. सकाम व अकाम से क्या तात्पर्य है?

उत्तर : आत्मशुद्धि या मोक्ष के लिए की जाने वाली निर्जरा सकाम है। भौतिक दृष्टि से या निरुद्देश्य की जाने वाली निर्जरा अकाम है।

प्रश्न ९. अपने आप होने वाली निर्जरा को क्या तत्त्व के अन्तर्गत माना है?

उत्तर : उदयमान कर्म वर्गणा दूसरे समय में निर्जरित होती है, उसे सहज निर्जरा कहा गया है। आचार्य भिक्षु ने इसे तत्त्व के रूप में सम्मिलित नहीं किया। विशेष प्रक्रिया से होने वाली निर्जरा को ही तत्त्व में लिया गया है।

प्रश्न १०. क्या मिथ्यात्वी के सकाम निर्जरा हो सकती है?

उत्तर : मिथ्यात्वी यदि आत्मशुद्धि के लिये तप, जप, ब्रह्मचर्य आदि अनुष्ठानों का पालन करता है तो उससे सकाम निर्जरा होती है। उसे भी मोक्ष का देश आराधक माना गया है।

प्रश्न ११. क्या अभवी[2] के भी सकाम निर्जरा हो सकती है?

उत्तर : अभवी की आत्मा भी बीच-बीच में आंशिक रूप में उज्ज्वल होती है, किन्तु वह उज्ज्वलता अकाम निर्जरा से होती है। मोक्ष प्राप्ति और आत्मशुद्धि का लक्ष्य न होने से अभवी के सकाम निर्जरा नहीं हो सकती।

प्रश्न १२. निर्जरा छह में कौन, नौ में कौन?

उत्तर : निर्जरा छह में जीव, नौ में दो—जीव, निर्जरा।

---

१. सभी बत्तीस गुणों के नाम देखें 'धर्मबोध' अध्याय के 'भाव' विभाग (प्रश्न १८) में।

२. वह जीव जिसमें मुक्त होने की योग्यता नहीं होती।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न १३. निर्जरा कौन सा भाव, कौन सी आत्मा?

उत्तर : निर्जरा में भाव चार—उपशम, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक। आत्मा पांच—द्रव्य, कषाय, चारित्र को छोड़कर।

प्रश्न १४. पुण्य का बंध कौन सा भाव, कौन सी आत्मा?

उत्तर : क्रिया एक है। तदपि बंध और निर्जरण की प्रक्रिया अलग-अलग हैं, अतः पुण्य का बंध उदय (नाम कर्म का) और पारिणामिक, ये दो भाव हैं। आत्मा एक योग है।

प्रश्न १५. निर्जरा और मोक्ष में क्या अन्तर है?

उत्तर : आत्मा की आंशिक उज्ज्वलता निर्जरा और सम्पूर्ण उज्ज्वलता मोक्ष है। दोनों में यही अन्तर है।

प्रश्न १६. निर्जरा और पुण्य की क्रिया एक है या दो?

उत्तर : निर्जरा और पुण्य दोनों की क्रिया एक है, अलग-अलग नहीं। जिस क्रिया से निर्जरा होती है, उसी क्रिया से पुण्य का बंध होता है।

प्रश्न १७. पहले निर्जरा होती है या पुण्य का बंध?

उत्तर : पहले पुण्य का बंध होता है। योग की चंचलता के साथ ही शुभ कर्म वर्गणा का बंध हो जाता है, निर्जरा बाद में होती है।

प्रश्न १८. क्या एकेन्द्रिय जीवों के निर्जरा होती है?

उत्तर : एकेन्द्रिय के भी अध्यवसाय लिये गये हैं। अध्यवसाय शुभ-अशुभ दोनों माने गये हैं, अतः शीत, ताप आदि कष्ट सहन होने में निर्जरा होती है, पुण्य का बंध होता है। तभी जीव एकेन्द्रियता को छोड़कर पंचेन्द्रियता को पा लेता है और वह मनुष्य बनकर मोक्ष में भी जा सकता है।

प्रश्न १९. निर्जरा तो आठों कर्मों की होती है, फिर वर्णन केवल चार घातिक कर्मों की निर्जरा से प्राप्त गुणों का ही क्यों आता है?

उत्तर : निर्जरा आठों कर्मों की होती है। आत्मगुणों के अवरोधक चार घातिक कर्म ही हैं, इसलिए उनके निर्जरण से आत्मगुण प्रकट हो जाते हैं। शेष चार अघाती कर्म—अटल अवगाहन, अमूर्तिपन, अगुरुलघुत्व, आत्मिक सुख—इन चार गुणों के बाधक हैं, किन्तु इनकी प्राप्ति शरीर रहते नहीं होती। ये गुण केवल मोक्ष अवस्था में ही मिलते हैं। इसलिये निर्जरा तत्त्व से ये गुण प्रकट नहीं होते। इन गुणों के प्रकट न होने से चार घातिक कर्मों के निर्जरण से जिन आत्मगुणों की प्राप्ति होती है, उन्हें ही बताया गया है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २०. क्षयोपशम के बत्तीस गुण निर्जरा जन्य है, क्या क्षायक व उपशम के गुण भी निर्जरा जन्य हैं?

उत्तर : उपशम भाव निर्जरा में सहयोगी तो बनता है, किन्तु निर्जरा जन्य नहीं है। उपशम में कर्म दबते हैं, झड़ते नहीं। झड़े बिना निर्जरा नहीं होती, इसलिए उपशम सम्यक्त्व व उपशम चारित्र वर्तमान में निर्जरा जन्य नहीं होता।

उदय की भांति उपशम को कर्म की एक अवस्था माना है। इसमें कर्म विद्यमान रहते हैं। क्षायिक भाव जन्य गुणों में कुछ निर्जरा से संबंधित हैं और कुछ मोक्ष तत्त्व से संबंधित हैं।

निर्जरा से संबंधित हैं—केवल ज्ञान, केवल दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि, उपभोगलब्धि, वीर्यलब्धि, (पंडित वीर्य)। शेष गुण-आत्मिक सुख, अटल अवगाहन, अमूर्ति, अगुरुलघु मोक्ष तत्त्व से संबंधित हैं।

प्रश्न २१. उपशमभाव निर्जरा में सहयोगी कैसे बनता है?

उत्तर : उपशमभाव मोह की संपूर्ण अनुदय अवस्था है। उसमें योग केवल शुभ ही होंगे, अशुभ नहीं। जहां शुभ योग है, वहां निर्जरा है, इस दृष्टि से उपशमभाव को निर्जरा में सहयोगी माना गया है।

प्रश्न २२. क्या निर्जरा से मात्र अशुभ कर्म ही टूटते हैं?

उत्तर : निर्जरा स्वयं उज्ज्वलता का पर्याय है। यह अशुभ कर्म के निर्जरण से ही होती है। सावद्य प्रवृत्ति करते हुए जो पुण्य-शुभ कर्म निर्जरित होते हैं, नाम निक्षेप से उसे भी निर्जरा कहते हैं। इससे आत्मा उज्ज्वल नहीं, प्रत्युत अशुभ कर्मों से मलिन होती है, इसलिये उसे निर्जरा तत्त्व में नहीं माना है।

प्रश्न २३. क्या जबर्दस्ती क्रिया करने से निर्जरा होती है?

उत्तर : स्वल्प निर्जरा होती है, जिसे अकाम निर्जरा कहते हैं। जैसे—दुश्मन द्वारा भोजन-पानी बंद कर दिया, उस समय अनचाहे भूख-प्यास को सहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में वहां अकाम निर्जरा होती है।

प्रश्न २४. कई लज्जावश धर्म करते हैं, क्या उसमें भी निर्जरा होती है?

उत्तर : वहां भी अकाम निर्जरा होती है। आगमों में लज्जावश शील पालने का उल्लेख है। ऐसा करने वाला भी देवयोनि में उत्पन्न हो जाता है।

© Jain Vishva Bharati　For Personal & Private Use Only　https://books.jvbharati.org

८. बंध तत्त्व

प्रश्न १. बंध की क्या परिभाषा है?

उत्तर : आत्मा के साथ कर्म वर्गणा का एकीभूत होना बंध है। ज्यों तिल में तेल, दूध में घी एकाकार है, वैसे आत्मा और कर्म वर्गणा का एकाकार होना बंध है।

प्रश्न २. बंध के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : बंध वैसे एक ही प्रकार का होता है। प्रक्रिया की विविधता से इसके चार प्रकार हैं—

१. प्रकृति बंध
२. स्थिति बंध
३. अनुभाग बंध
४. प्रदेश बंध

प्रश्न ३. कर्म बंध के समय प्रदेश बंध आदि चारों का होता है या तीन, दो, एक का हो सकता है?

उत्तर : सकषायी के प्रदेश आदि चारों का ही बंध होगा। अकषायी के प्रदेश व प्रकृति बंध होगा। स्थिति व अनुभाग बंध कषाय के बिना हो नहीं सकता, इसलिए वहां बंधने वाले कर्म दो समय में झड़ जाते हैं।

प्रश्न ४. प्रकृति बंध किसे कहते हैं?

उत्तर : कर्मों के स्वभाव को प्रकृति बंध कहते हैं। जैसे—ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से ज्ञान पर आवरण आना।

प्रश्न ५. स्थिति बंध किसे कहते हैं?

उत्तर : कर्मों का बंध होने के बाद जब तक वे आत्मा के साथ चिपके रहते हैं, उसे स्थिति बंध कहते हैं। यह स्थिति बंध न्यूनतम दो समय[1], अधिकतम सित्तर करोड़ाकरोड़ सागर का होता है।

प्रश्न ६. अनुभाग बंध किसे कहते हैं?

उत्तर : कर्मों के फल देने की तीव्र या मंद शक्ति को अनुभाग बंध कहते हैं।

प्रश्न ७. प्रदेश बंध किसे कहते हैं?

उत्तर : आत्मा के साथ कर्मों का सम्बन्ध होना प्रदेश बंध है।

---

१. काल का सूक्ष्मतम अविभाज्य विभाग।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ८. बंध के चारों प्रकारों में मूल बंध कौन-सा है?

उत्तर : बंध के चारों प्रकारों में मूल बंध 'प्रदेश बंध' है। अवशिष्ट तीनों तो इसके साथ-साथ होते हैं।

प्रश्न ९. बंध और आश्रव में क्या अन्तर है?

उत्तर : आश्रव कर्मों को आकर्षित करने वाली आत्म प्रवृत्ति है। उस आकर्षित कर्म वर्गणा का आत्मा के साथ एकीभाव होना बंध है।

प्रश्न १०. बंध और पुण्य-पाप में क्या अंतर है?

उत्तर : कर्मों की उदीयमान अवस्था को पुण्य-पाप कहते हैं। कर्मों की बंधनात्मक अवस्था बंध है।

प्रश्न ११. बंध से क्या नये कर्मों का भी बंध होता है?

उत्तर : बंध से कर्मों का बंध नहीं होता। वह तो केवल बंधनात्मक अवस्था मात्र है।

प्रश्न १२. बंध को फिर बाधक क्यों माना गया?

उत्तर : बंध से आत्मा विकृत तो नहीं होती, पर बंधन स्वयं बाधा है। जब तक बंध है, तब तक ही संसार है।

प्रश्न १३. बंध से पूर्व कर्म वर्गणा ज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियों में विभक्त होती है?

उत्तर : नहीं। बंधते समय केवल कर्म वर्गणा आकर्षित होती है, उसी के साथ प्रकृति का निर्धारण होता है। जैसी प्रवृत्ति होती है वैसी प्रकृति निर्धारित हो जाती है।

प्रश्न १४. क्या बंधी हुई कर्म वर्गणा का परोक्षज्ञानी ज्ञान या अनुभव कर सकते हैं?

उत्तर : परोक्षज्ञानी बंध का ज्ञान या अनुभव नहीं कर सकते, क्योंकि वर्गणा चतुःस्पर्शी है।

प्रश्न १५. क्या बंध की स्वतंत्र क्रिया है?

उत्तर : बंध के दो प्रकार भी हैं—अशुभ बंध और शुभ बंध। अशुभ बंध की स्वतंत्र क्रिया है। शुभ बंध की स्वतंत्र क्रिया नहीं है, वह तो निर्जरा की क्रिया का ही प्रासंगिक फल है।

प्रश्न १६. कर्म बंध के हेतु कौन-कौन से हैं?

उत्तर : प्रत्येक कर्म बंध के कई हेतु हैं। संक्षेप में वह इस प्रकार हैं—

ज्ञानावरणीय कर्म	—	ज्ञान और ज्ञानी के प्रति असद् व्यवहार ।
दर्शनावरणीय कर्म	—	दर्शन और दर्शनी के प्रति असद् व्यवहार।
वेदनीय कर्म	—	दुःख देने और न देने की प्रवृत्ति।
मोहनीय कर्म	—	कषाय और नोकषायजन्य प्रवृत्ति।
आयुष्य कर्म	—	नरक आयुष्य–क्रूर व्यवहार।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

तिर्यंच आयुष्य	—	वंचना पूर्ण व्यवहार।
मनुष्य आयुष्य	—	ऋजु व्यवहार।
देव आयुष्य	—	संयत व्यवहार।
नाम कर्म	—	कथनी-करनी में समानता और असमानता।
गोत्र कर्म	—	अहंकार करना और न करना।
अन्तराय कर्म	—	बाधा पहुंचाना।

प्रश्न १७. कार्मण शरीर और बंध एक है या दो?

उत्तर : एक है। कार्मण शरीर स्वयं ही बंध है और बंध ही कार्मण शरीर है। पुण्य-पाप कार्मण शरीर की ही क्रिया है।

प्रश्न १८. कर्म के कर्म लगता है या आत्मा के कर्म लगता है?

उत्तर : कर्म के कर्म लगता है, आत्मा के नहीं। क्योंकि संसारी आत्मा कर्म-विमुक्त नहीं है, अतः हर कर्म वर्गणा से आत्मा प्रभावित होती है। इसलिए आत्मा के कर्म लगे, ऐसा व्यवहार में कहा जाता है।

प्रश्न १९. कर्मों के बंधन एवं उनके फल भोग में किसी दैवी शक्ति का योग रहता है क्या?

उत्तर : किसी भी दैवी शक्ति का योग नहीं रहता। यह तो आत्मा के अपने पुरुषार्थ तथा कर्म प्रक्रिया से स्वतः होता है।

९. मोक्ष तत्त्व

प्रश्न १. मोक्ष की क्या परिभाषा है?

उत्तर : आत्मा की सर्वथा कर्ममुक्त अवस्था को मोक्ष कहते हैं।

प्रश्न २. मोक्ष में भाव कितने हैं?

उत्तर : मोक्ष में भाव दो होते हैं—क्षायिक और पारिणामिक।

प्रश्न ३. मोक्ष में आत्मा कितनी होती हैं?

उत्तर : मोक्ष में चार आत्माएं होती हैं—

१. द्रव्य आत्मा, २. ज्ञान आत्मा, ३. दर्शन आत्मा, ४. उपयोग आत्मा।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ४. मोक्ष में क्रिया नहीं है, फिर आत्मा के भेद क्यों?

उत्तर : मोक्ष में योगजन्य क्रिया नहीं है, किन्तु ज्ञान और दर्शन का उपयोग सतत चालू है। इस दृष्टि से वहां भी आत्मा के भेद किये गये हैं।

प्रश्न ५. तीन लोक (ऊर्ध्व, अधो और मध्य)[1] में कहां से मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है?

उत्तर : तीनों लोकों में मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। चौदह रज्ज्वात्मक लोक में केवल पैंतालीस लाख योजन का मनुष्य लोक है। उसमें एक लाख योजन का जम्बू द्वीप है। इसके पश्चिम महाविदेह की दो विजय एक हजार योजन नीचे गई हुई हैं, जबकि मध्य लोक नौ सौ योजन नीचे तक है। उससे आगे सौ योजन अधो लोक है। उसमें रहने वाले जीव भी मोक्ष में जा सकते हैं।

मानुषोत्तर पर्वत की ऊंचाई १७२१ योजन की है। इसके ९०० योजन के बाद ऊर्ध्व लोक शुरू हो जाता है, वहां भी जीव मुक्त हो सकते हैं। मेरु पर्वत पर भी सिद्ध होते हैं। पैंतालीस लाख योजन[2] प्रमाण इस मनुष्य लोक में एक अंगुल भूमि भी ऐसी नहीं है, जहां कोई न कोई मुक्त न हुआ हो।

प्रश्न ६. मोक्ष कहां हैं?

उत्तर : मोक्ष आत्मा की अवस्था है, अतः कर्म मुक्त आत्मा ही मोक्ष है। मोक्ष किसी स्थान विशेष का नाम नहीं है।

प्रश्न ७. मुक्तात्माएं कहां रहती हैं?

उत्तर : मुक्तात्माएं मनुष्यलोक में मुक्त होती हैं। कर्ममुक्त होते ही आत्मा एक समय में ही ऊंची लोकान्त तक पहुंच जाती हैं। सिद्ध शिला से ऊपर एक योजन लोकान्त है, उस लोकान्त भाग में मुक्तात्माएं अवस्थित रहती हैं।

प्रश्न ८. सिद्ध शिला क्या है और कहां पर है?

उत्तर : सिद्ध शिला पृथ्वीकायिक है। यह पैंतालीस लाख योजन लम्बी-चौड़ी है। उसकी मोटाई बीच में आठ योजन है। वह क्रमशः पतली होते-होते किनारे पर

---

१. ● ऊर्ध्व लोक ● अधो लोक ● मध्य लोक : पृथ्वी के समतल भाग से ९०० योजन ऊपर तथा ९०० योजन नीचे, इन १८०० योजन को मध्य लोक कहते हैं। इससे नीचे अलोक पर्यंत अधो लोक व ऊपर अलोक पर्यंत ऊर्ध्व लोक है।

२. ८००० धनुष्य अर्थात् ४ कोस का एक योजन होता है। इससे अशाश्वत वस्तु का नाप होता है, शाश्वत वस्तु के नाप से ४००० कोस का एक योजन होता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मक्खी की पांख जितनी पतली है। पूरी शिला स्फटिक रत्नमय है। यह लोकान्त से एक योजन नीचे व मनुष्य लोक की ठीक समरेखा में है।

प्रश्न ९. सिद्ध यहां होते हैं ऊपर लोकान्त में समरेखा में ही जाकर स्थित होते हैं या इधर-उधर भी जा सकते हैं?

उत्तर : सिद्ध शिला और मनुष्य लोक दोनों की लम्बाई-चौड़ाई बराबर है। अतः जिस स्थान में सिद्ध होते हैं, उसी की समरेखा में सिद्ध शिला से ऊपर लोकान्त भाग में वे अवस्थित हो जाते हैं। उनकी गति ऋजु मानी गई है, अतः इधर-उधर जाने का प्रश्न ही नहीं है।

प्रश्न १०. सिद्ध शिला पर जब सिद्ध नहीं रहते, फिर इसे सिद्ध शिला क्यों कहते हैं?

उत्तर : सिद्ध शिला के बाद सिद्धों तक बीच में कोई पृथ्वी नहीं है, यही आखिरी पृथ्वी है। इससे ऊपर एक योजन है। उसके चौबीसवें भाग में सिद्ध अवस्थित हैं।

प्रश्न ११. योजन के चौबीसवें भाग में केवल सिद्ध ही रहते हैं या और भी कोई जीव रहते हैं?

उत्तर : सिद्धों के साथ सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव भी रहते हैं। सूक्ष्म जीव पूरे लोक में भरे हुए हैं, वे सिद्ध क्षेत्र में भी व्याप्त हैं। बादर वायुकाय के जीव भी वहां हो सकते हैं।

प्रश्न १२. सिद्धों के साथ रहने वाले एकेन्द्रिय जीवों को भी क्या मोक्ष-सुख की अनुभूति होती है?

उत्तर : मोक्ष-सुख स्थान विशेष से समुत्पन्न नहीं है। कर्मक्षय से प्राप्त आत्मसुख है। एकेन्द्रिय जीवों को उसकी अनुभूति कैसे हो सकती है? एकेन्द्रिय जीव तो अपने योनिजन्य कष्ट अन्य स्थानों की भांति ही वहां भोगते हैं।

प्रश्न १३. सिद्ध क्या करते हैं?

उत्तर : सिद्ध अकर्मा हैं, वहां योगजन्य क्रिया है ही नहीं। उपयोगजन्य क्रिया वहां सहज में होती रहती है। सिद्ध भगवान् कृतकार्य हैं। उनके लिये करना कुछ शेष रहा ही नहीं।

प्रश्न १४. सिद्धों के १५ भेद कौन से हैं?

उत्तर : सिद्ध ज्योतिर्मय हैं, अभेद स्वरूप हैं इसलिए उनका कोई भेद नहीं होता, किन्तु पूर्व अवस्था के अनुसार उनके १५ भेद किये गये हैं—

१. तीर्थसिद्ध — तीर्थंकर द्वारा तीर्थ की स्थापना के बाद सिद्ध होने वाले।
२. अतीर्थसिद्ध — तीर्थ स्थापना के पूर्व सिद्ध होने वाले।
३. तीर्थंकरसिद्ध — तीर्थंकर होकर सिद्ध होने वाले।
४. अतीर्थंकरसिद्ध — तीर्थंकर के अतिरिक्त अन्य सिद्ध होने वाले।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

५. स्वलिंगसिद्ध — जैन साधुओं के वेश में सिद्ध होने वाले।
६. अन्यलिंगसिद्ध — अन्य साधुओं के वेश में सिद्ध होने वाले।
७. गृहलिंगसिद्ध — गृहस्थ के वेश में सिद्ध होने वाले।
८. स्त्रीलिंगसिद्ध — स्त्रीलिंग में सिद्ध होने वाले।
९. पुरुषलिंगसिद्ध — पुरुषलिंग में सिद्ध होने वाले।
१०. नपुंसकलिंगसिद्ध — नपुंसकलिंग में सिद्ध होने वाले।
११. प्रत्येकबुद्धसिद्ध — किसी एक निमित्त से विरक्त हो दीक्षा लेकर सिद्ध होने वाले।
१२. स्वयंबुद्धसिद्ध — स्वयं बोधि पाकर मुक्त होने वाले।
१३. बुद्धबोधितसिद्ध — उपदेश से बोधि पाकर मुक्त होने वाले।
१४. एकसिद्ध — एक समय में एक जीव सिद्ध होने वाले।
१५. अनेकसिद्ध — एक समय में अनेक जीव सिद्ध होने वाले।

प्रश्न १५. तीर्थ प्रवर्तन से पूर्व भी क्या कोई मोक्ष जा सकता है?

उत्तर : कभी-कभी ऐसा हो जाता है। जब कर्म से मुक्त हुआ तभी सिद्ध बन गया। उसके लिये तीर्थ, अतीर्थ का कोई महत्त्व नहीं है। जो दीर्घकालीन सम्यक् साधना करे, उसके लिये तीर्थ का महत्त्व है। इस अवसर्पिणी में भगवान् श्री ऋषभदेव की माता श्री मरुदेवी तीर्थ प्रवर्तन से पूर्व सिद्ध हो गई थीं।

प्रश्न १६. दूसरे समुदाय की वेश-भूषा में रहते हुए भी कोई मुक्त हो सकता है?

उत्तर : मुक्त कर्मों से होता है, उसका सम्बन्ध किसी वेश-भूषा से नहीं है। जिसने कर्मों को क्षय किया, वही मुक्त हो गया। फिर चाहे वह अन्य संप्रदाय की वेश-भूषा में भी क्यों न हो।

प्रश्न १७. दिगम्बर परम्परा में स्त्री-मुक्ति का निषेध किया है जबकि श्वेताम्बर परम्परा में सिद्ध होना बताया है, यह संगति फिर कैसे बैठेगी?

उत्तर : दिगम्बर परम्परा स्त्री-मुक्ति का निषेध करती है, किन्तु श्वेताम्बर परम्परा मुक्त होने में स्त्री या पुरुष का कोई भेद नहीं मानती। वस्तुतः बाधक लिंग नहीं, वेद-विकार है। वेद के होते हुए कोई मुक्त नहीं होता। वेद की समाप्ति के बाद कोई किसी लिंग में हो, मुक्त होने में कोई बाधा नहीं है।

प्रश्न १८. नपुंसकलिंग में सम्यक्त्व प्राप्ति का निषेध टीकाकारों ने किया है। यहां नपुंसकलिंग सिद्ध कहा गया है, इसकी संगति कैसे बैठेगी?

उत्तर : टीकाकारों के अभिमत में जन्मना नपुंसक सम्यक्त्वी नहीं होता। यहां प्रसंग

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कृतनपुंसक का है। महर्षि गांगेय की भांति कृतनपुंसक के मुक्त होने में कोई विसंगति नहीं है।

प्रश्न १९. जब लिंग बाधक नहीं है तब नपुंसकलिंगी में सम्यक्त्व का निषेध क्यों किया गया?

उत्तर : जन्मना नपुंसकलिंगी में तीव्र विकार का उदय माना गया है। तीव्र विकार से कषाय भी अनंतानुबंधी बन जाता है, उसके होते सम्यक्त्व की उपलब्धि नहीं हो सकती।

प्रश्न २०. मोक्ष प्राप्ति जिस चरम शरीर से होती है, उसमें संहनन तथा संस्थान कौन-सा होता है?

उत्तर : उसमें संहनन एक वज्रऋषभनाराच तथा संस्थान छहों में से कोई भी हो सकता है।

प्रश्न २१. समुद्घात किसे कहते हैं, इसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : वेदना आदि निमित्तों से आत्म प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना समुद्घात है। उसके सात प्रकार हैं—

१. वेदनीय समुद्घात — विकृति जनित (वात, पित्त आदि) या विषपान आदि की तीव्र वेदना से आत्म प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना।

२. कषाय समुद्घात — कषाय की तीव्रता से आत्म प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना।

३. मारणांतिक समुद्घात — मरण के समय आगामी उत्पत्ति स्थान तक आत्म प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना।

४. वैक्रिय समुद्घात — वैक्रिय लब्धि के द्वारा नाना रूपों की विक्रिया करने के लिए आत्म प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना।

५. तैजस् समुद्घात — किसी निमित्त से तैजस् शरीर का विस्फोट करना। इसे तेजो लब्धि भी कहा जाता है। यह उष्ण व शीतल, दोनों होती है।

६. आहारक समुद्घात — संदेह को दूर करने के लिए आहारक लब्धि संपन्न मुनि अपने मूल शरीर को छोड़े बिना अपने शरीर से आत्म प्रदेशों को बाहर निकालकर एक हाथ का पुतला बनाते हैं। जहां केवली होते हैं वहां जाकर वह संदेह

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

का निवारण करता है और पुनः आकर शरीर में प्रवेश कर जाता है।

७. केवली समुद्घात — जिस केवली के आयुष्य कर्म कम हो तथा वेदनीय, नाम व गोत्र कर्म अधिक हों, उन्हें परस्पर बराबर करने के लिए यह समुद्घात होता है। पहले छह समुद्घात छद्मस्थ के तथा सातवां केवलियों के होता है।

प्रश्न २२. क्या केवली समुद्घात में मोक्ष हो सकता है?

उत्तर : केवली समुद्घात में मोक्ष नहीं होता। समुद्घात के बाद अन्तर्मुहूर्त्त में जीव मुक्त हो जाता है।

प्रश्न २३. स्त्री केवली के समुद्घात होता है?

उत्तर : स्त्री केवली के केवली समुद्घात नहीं हो सकता। स्त्री शरीर को केवली समुद्घात के योग्य नहीं माना।

प्रश्न २४. क्या तीर्थंकरों के केवली समुद्घात होता है?

उत्तर : तीर्थंकरों के केवली समुद्घात नहीं होता, केवली के होता है।

प्रश्न २५. क्या सभी केवलियों के केवली समुद्घात होता है?

उत्तर : केवल ज्ञान उत्पन्न होने के समय से छह महीने तक केवली समुद्घात नहीं होता। उससे अधिक अवधि वाले सभी केवलियों के यह समुद्घात नहीं होता, कुछेक केवलियों के होता है।

प्रश्न २६. केवली समुद्घात किया जाता है या स्वतः होता है?

उत्तर : केवली समुद्घात किया नहीं जाता, स्वतः होता है।

प्रश्न २७. केवली समुद्घात का क्रम क्या है?

उत्तर : समुद्घात में आठ समय लगते हैं। पहले समय में आत्म प्रदेश शरीर से निकलकर दण्डाकार फैल जाते हैं। यह दण्ड लोक के दोनों छोरों का स्पर्श करता है। इस दण्ड की मोटाई शरीर प्रमाण होती है। दूसरे समय में यह दण्ड कपाटाकार बन जाता है। तीसरे समय में कपाटाकार आत्म प्रदेश मथनी के आकार के बन जाते हैं। चौथे समय में अवशिष्ट भागों में फैलकर आत्म प्रदेश पूरे लोक में व्याप्त हो जाते हैं। ये फैले हुए आत्म प्रदेश अंत के चार समयों में क्रमशः सिकुड़ते हैं। पांचवें समय में पुनः मथनी के आकार, छठे समय में कपाटाकार, सातवें समय में दण्डाकार और आठवें समय में पूर्व की भांति शरीरस्थ हो जाते हैं। समुद्घात का तीसरा, चौथा, पांचवां समय अनाहारक होता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २८. सिद्धों के आत्म प्रदेश लोकान्त भाग में यों ही छितर जाते हैं या किसी आकार विशेष में अवस्थित होते हैं?

उत्तर : सिद्धों का कोई आकार नहीं होता, फिर भी उनके आत्म प्रदेश पूर्व शरीर के संस्थान के अनुरूप अवस्थित होते हैं। बैठे, खड़े या लेटे जिस मुद्रा में मुक्त होते हैं, उसी मुद्रा में आत्म प्रदेश स्थिर हो जाते हैं।

प्रश्न २९. क्या सिद्धों की कोई अवगाहना भी है?

उत्तर : वैसे तो सिद्ध अरूप हैं। अरूप की क्या अवगाहना होगी! पूर्व शरीर की अपेक्षा से सिद्धों की अवगाहना एक-तिहाई भाग कम रह जाती है। जैसे–५०० धनुष्य की अवगाहना (शरीर की लंबाई) वाले सिद्ध होते हैं, तो उनकी अवगाहना ३३३ धनुष्य[1] १ हाथ[2] ८ अंगुल रह जाती है।

प्रश्न ३०. क्या सिद्धों की पर्याय भी बदलती है?

उत्तर : सिद्धों के ज्ञान और दर्शन की पर्याय बदलती रहती है। समय-समय पर लोक की हर वस्तु बदलती रहती है। सिद्ध अपने ज्ञान से उन्हीं को जानते हैं, देखते हैं, इसी रूप में पर्याय बदलती रहती है। बिना पर्याय के पदार्थ का अस्तित्व ही नहीं रहता।

प्रश्न ३१. क्या सिद्धों में प्राण और पर्याप्ति हैं?

उत्तर : प्राण और पर्याप्ति दोनों संसारी जीवों के लिए उपयोगी है। पर्याप्ति पौद्गलिक है, शरीर सापेक्ष है। प्राण पर्याप्ति अपेक्षित माना गया है, प्राण आत्म शक्ति होते हुए भी आधिभौतिक है। उसकी अभिव्यक्ति पर्याप्ति सापेक्ष है। मोक्ष में शरीर नहीं है अतः सिद्धों में पर्याप्ति भी नहीं और प्राण भी नहीं है।

प्रश्न ३२. एक समय में एक साथ कितने सिद्ध हो सकते हैं?

उत्तर : एक समय में एक साथ एक सौ आठ सिद्ध हो सकते हैं। वे सभी मध्यम अवगाहना वाले होते हैं। वे दो हाथ से लेकर पांच सौ धनुष्य से एक अंगुल कम तक के अवगाहना वाले होते हैं। ये सभी प्रतिपाती सम्यक्त्वी होते हैं।

प्रश्न ३३. एक साथ एक सौ आठ सिद्ध होने के बाद कितने समय तक १०८ सिद्ध नहीं हो सकते?

उत्तर : कम से कम सात समय तक पुनः एक सौ आठ सिद्ध नहीं हो सकते।

प्रश्न ३४. उन सात समयों में सिद्ध होते हैं या नहीं? होते हैं तो कितने होते हैं?

उत्तर : सिद्ध प्रति समय हो सकते हैं। उन सात समय में ज्यादा से ज्यादा होने वाले

---

१. ९० अंगुल या दो कुक्षि

२. दो वितस्ति या २४ अंगुल

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

सिद्धों की संख्या क्रमशः इस प्रकार हैं—

पहला समय	—	१०२
दूसरा समय	—	९६
तीसरा समय	—	८४
चौथा समय	—	७२
पांचवां समय	—	६०
छठा समय	—	४८
सातवां समय	—	३२

प्रश्न ३५. नीचे लोक में एक साथ कितने सिद्ध हो सकते हैं?

उत्तर : नीचे लोक में एक साथ बीस सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न ३६. ऊर्ध्व लोक में एक साथ कितने सिद्ध हो सकते हैं?

उत्तर : ऊर्ध्व लोक में एक साथ चार सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न ३७. मेरु पर्वत पर स्थित पंडुक वन में भी कोई सिद्ध हो सकता है?

उत्तर : पंडुक वन में एक साथ दो जीव सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न ३८. समुद्र में एक साथ कितने सिद्ध हो सकते हैं?

उत्तर : समुद्र में एक साथ दो जीव सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न ३९. वहां ये चरम शरीरी जीव कहां से आते हैं?

उत्तर : पूर्व जन्म के दुश्मन देव द्वारा समुद्र में फेंक देने से मुनि वहां पहुंच जाते हैं।

प्रश्न ४०. क्या हर किसी मुनि का अपहरण किया जा सकता है?

उत्तर : नहीं, श्रेणी प्राप्त मुनि तथा सर्वज्ञ मुनि का अपहरण नहीं हो सकता।

प्रश्न ४१. मुनि के शरीर से अप्कायिक जीवों की वहां जो हिंसा होती है, उससे क्या कर्मबन्ध नहीं होता?

उत्तर : अप्रमत्त अवस्था में योगजन्य केवल पुण्य का बंध होता है। वहां होने वाली हिंसा को द्रव्य हिंसा माना है, भाव हिंसा नहीं। इसलिए हिंसा जन्य क्रिया वहां मुनि की नहीं है।

प्रश्न ४२. सर्वोत्कृष्ट अवगाहना वाले एक समय में कितने सिद्ध हो सकते हैं?

उत्तर : सर्वोत्कृष्ट अवगाहना (पांच सौ धनुष्य) वाले एक साथ दो सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न ४३. महाविदेह क्षेत्र से एक साथ एक सौ आठ सिद्ध होना बतलाया है। चूंकि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

वहां के मनुष्यों की अवगाहना पांच सौ धनुष्य की है तो क्या सर्वोत्कृष्ट अवगाहना की बात भरत, एरावत क्षेत्र के लिए है?

उत्तर : सर्वोत्कृष्ट अवगाहना का नियम सर्वत्र लागू है। महाविदेह क्षेत्र में एक सौ आठ सिद्ध होते हैं, तो उनकी शारीरिक ऊंचाई पांच सौ धनुष्य से कुछ न्यून ही होती है। चाहे एक अंगुल भी कम क्यों न हो।

प्रश्न ४४. सबसे छोटी अवगाहना वाले एक साथ कितने सिद्ध हो सकते हैं?

उत्तर : छोटी अवगाहना (दो हाथ) वाले एक साथ चार सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न ४५. एक साथ कितने तीर्थंकर सिद्ध हो सकते हैं?

उत्तर : एक साथ बीस तीर्थंकर सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न ४६. एक साथ बीस तीर्थंकरों का निर्वाण कल्याणक इन्द्र कैसे करते होंगे?

उत्तर : वैक्रिय शरीर बनाकर बीस तीर्थंकरों का निर्वाण कल्याणक इन्द्र करते हैं, ऐसा आचार्यों का अभिमत है।

प्रश्न ४७. क्या अकर्म भूमि से सिद्ध हो सकते हैं?

उत्तर : अकर्म भूमिक क्षेत्र भी मनुष्य लोक के अन्तर्गत ही है अतः वहां भी एक साथ दस सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न ४८. अतीर्थसिद्ध सिद्धों के भेदों में एक भेद है। अतीर्थ में एक साथ कितने सिद्ध होते हैं?

उत्तर : तीर्थ प्रवर्तन नहीं हुआ हो, उस समय विशेष को उस क्षेत्र में अतीर्थ समय कहते हैं। उसमें एक साथ दस जीव सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न ४९. तापस आदि की वेश-भूषा में सिद्ध होने का उल्लेख है। ऐसे अन्यलिंग में एक साथ कितने सिद्ध हो सकते हैं?

उत्तर : अन्यलिंग में एक साथ दस सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न ५०. मेरु पर्वत पर चालीस योजन ऊंची चूलिका है। क्या उस पर भी सिद्ध होते हैं?

उत्तर : चूलिका पंडुक वन में है। पंडुक वन की तरह वहां भी सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न ५१. एकेन्द्रिय में भी क्या एकाभवतारी जीव होते हैं?

उत्तर : हो सकते हैं। एकेन्द्रिय के पांच प्रकार होते हैं—पृथ्वीकाय, अप्काय, तैजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय। इनमें तैजस्काय व वायुकाय में एकाभवतारी जीव नहीं होते। पृथ्वी, पानी, वनस्पति में हो सकते हैं। पृथ्वी तथा अप्काय से निकले जीव मनुष्य बनकर एक साथ मोक्ष जाने वाले चार और

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

वनस्पति काय से निकले हुए जीव मनुष्य बनकर एक साथ छह सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न ५२. महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होने में क्या अर का प्रभाव रहता है?

उत्तर : वैसे महाविदेह क्षेत्र में न तो उत्सर्पिणी न ही अवसर्पिणी काल रहता है। वहां अर का कोई प्रभाव नहीं रहता। एक साथ सिद्ध होने में अर का प्रभाव जरूर रहता है। भरत व एरावत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल का जब पहला, दूसरा, पांचवां व छठा अर रहता है तब महाविदेह में एक साथ दस सिद्ध हो सकते हैं तथा तीसरे, चौथे अर में एक साथ एक सौ आठ सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न ५३. किस योनि से निकलकर बने मनुष्य सबसे कम और सबसे ज्यादा सिद्ध हो सकते हैं?

उत्तर : चौथी नरक, पृथ्वी, अप् से निकलकर बने मनुष्य सबसे कम चार सिद्ध होते हैं और पहले स्वर्ग से आकर बने मनुष्य सबसे ज्यादा एक सौ आठ सिद्ध होते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

गति बोध

१. देव गति
२. मनुष्य गति
३. तिर्यंच गति
४. नरक गति

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१. देव गति

प्रश्न १. देव किसे कहते हैं?

उत्तर : अपने स्वरूप से जो दीप्तिमान है, 'देव्यंति स्वरूप इति देवा'—उसे देव कहते हैं। देव नामकर्म के उदय से जो उत्पन्न होते हैं, उसे देव कहते हैं।

प्रश्न २. देवत्व प्राप्ति के मुख्य हेतु कितने हैं?

उत्तर : देवत्व प्राप्ति के मुख्य चार हेतु हैं—

१. सराग संयम — राग सहित व्यक्ति का संयम
२. संयमासंयम — श्रावकत्व का पालन
३. बाल-तपस्या — मिथ्यात्वी की तपस्या
४. अकाम-निर्जरा — मोक्ष की इच्छा बिना की तपस्या।

प्रश्न ३. देवों की पहचान क्या है?

उत्तर : देवों की पहचान के चार लक्षण बताये गये हैं—

१. अम्लान पुष्पमाला।
२. अनिमेष नेत्र।
३. मनसाकारी-मन के अनुसार प्रत्येक कार्य का संपादित होना।
४. पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर रहना।

प्रश्न ४. देवों के पर्याप्ति पांच ही क्यों?

उत्तर : आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति तो यथावत् है, भाषा और मनःपर्याप्ति का कार्य युगपत् हो जाता है, इसलिए पर्याप्ति पांच मानी गई हैं।

प्रश्न ५. देवों के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : देवों के मुख्य चार प्रकार हैं—

१. भवनपति
२. व्यन्तर
३. ज्योतिष्क
४. वैमानिक

इनके अवान्तर भेद ९९[1] हो जाते हैं।

---

१. भेद-प्रभेद देखें पहले 'तत्त्व बोध' अध्याय के 'जीव' विभाग (प्रश्न १५) में।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ६. भवनपति देवता कहां रहते हैं?

उत्तर : इसी रत्नप्रभा पृथ्वी में एक हजार योजन नीचे जाने के बाद भवनपति देवों के भवन आ जाते हैं। रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रतरों में पहली नारकी के नारक जीव रहते हैं। अन्तरों में भवनपति देवों के विशाल भवन हैं। एक-एक अन्तर में एक-एक जाति के भवनपति रहते हैं। भवनवासी होने के कारण ही उन्हें भवनपति कहा है।

प्रश्न ७. इनको कुमार क्यों कहा गया है?

उत्तर : ये सदैव कुमार अवस्था की भांति चंचल, अलमस्त व अलंकृत रहते हैं, अतः कुमार कहलाते हैं।

प्रश्न ८. इनके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : इनके दस प्रकार हैं—

१. असुरकुमार	२. नागकुमार
३. सुपर्णकुमार	४. विद्युत्कुमार
५. अग्निकुमार	६. द्वीपकुमार
७. उदधिकुमार	८. दिक्कुमार
९. वायुकुमार	१०. स्तनितकुमार

प्रश्न ९. व्यंतर देव कहां रहते हैं?

उत्तर : व्यंतर देवों की दो कोटियां हैं।

प्रथम कोटि के देव इस पृथ्वी के प्रारम्भ के हजार योजन में प्रथम व अंतिम सौ-सौ योजन छोड़कर आठ सौ योजन में रहते हैं।

दूसरी कोटि के इस रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रारंभ के सौ योजन में प्रथम व अंतिम दस-दस योजन छोड़कर अस्सी योजन में रहते हैं। वहां इनके भवन बने हुए हैं।

प्रश्न १०. इनको व्यंतर क्यों कहा गया है?

उत्तर : पृथ्वी के विविध अंतरों में रहने के कारण उन्हें व्यंतर कहा गया है। ये पर्वतों, गुफाओं, वृक्षों, जलाशयों, शून्य-गृहों में रहने के शौकीन होते हैं।

प्रश्न ११. व्यंतर के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : प्रथम कोटि के देवों के आठ प्रकार हैं—

१. पिशाच	२. भूत
३. यक्ष	४. राक्षस
५. किन्नर	६. किंपुरुष
७. महोरग	८. गन्धर्व

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

दूसरी कोटि के देवों के भी आठ प्रकार हैं—

१. आनपन्नी	२. पानपन्नी
३. ईसीवाई	४. भूइवाई
५. कंदिय	६. महाकंदिय
७. कोहंड	८. पयंग देव

प्रश्न १२. व्यंतर देवों का स्थान नीचे है, फिर ऊपर क्यों आते हैं?

उत्तर : व्यंतर देवों का नीचे जन्म स्थान है, मनुष्यलोक क्रीड़ास्थल है, इसलिए यहां बार-बार आते रहते हैं।

प्रश्न १३. वट, पीपल आदि वृक्षों में देवताओं का निवास होता है, ऐसा कहा जाता है। क्या इसमें सचाई है?

उत्तर : इन वृक्षों पर कभी-कभी व्यंतर देव कुछ समय विशेष के लिये अपना प्रभुत्व जमा लेते हैं। व्यंतर देवों का वृक्षों से विशेष लगाव भी है। उनके जो चिह्न-लक्षण आये हैं, वे सभी अलग-अलग जाति के वृक्ष हैं, उनका क्रम इस प्रकार है—

व्यंतर देव	चिह्न
१. पिशाच	कलंब वृक्ष
२. भूत	शालि वृक्ष
३. यक्ष	वट वृक्ष
४. राक्षस	पाटलि वृक्ष
५. किन्नर	अशोक वृक्ष
६. किंपुरुष	चंपक वृक्ष
७. महोरग	नाग वृक्ष
८. गंधर्व	टिंबरू वृक्ष

प्रश्न १४. नरक में जैसे परमाधार्मिक देवों का दखल है, वैसे क्या मनुष्यलोक में भी व्यंतर देवों का हस्तक्षेप रहता है?

उत्तर : किसी जाति के देव विशेष की यहां दखलंदाजी नहीं होती। इन देवों में भी अपनी व्यवस्था होती है। उससे हटकर कार्य करना उनके लिए दण्डनीय माना जाता है, फिर भी पिछले अनुबंधों के कारण यहां देवता कहीं-कहीं इष्ट-अनिष्ट कर सकते हैं।

प्रश्न १५. भैरूंजी, माताजी, हनुमानजी, पितरजी आदि देवता कौन हैं? यहां अपने धाम क्यों बनाते हैं?

उत्तर : ये सब व्यंतर जाति के देव लगते हैं। ये अपनी पूजा, प्रतिष्ठा व ख्याति पाने के लिये कुछ चमत्कार दिखा देते हैं अथवा किसी को थोड़ा-बहुत लाभ पहुंचा देते

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

हैं। लोगों को तो इतना ही चाहिए और वे उन देवों की भक्ति में लग जाते हैं। कहीं-कहीं इनके नाम का पाखण्ड भी चलता है।

प्रश्न १६. हनुमानजी मुक्त हो गये, ऐसा हम मानते हैं। फिर यहां इस नाम से कौन प्रकट होते हैं?

उत्तर : अंजनी पुत्र हनुमान निश्चित ही मुक्त हो गये। यहां जो प्रकट होते हैं वे उनसे भिन्न हैं, किन्तु उसी नाम से प्रकट होकर अपना चमत्कार दिखाते हैं।

प्रश्न १७. ज्योतिष्क देव कहां रहते हैं?

उत्तर : मध्य लोक में पृथ्वी तल से ऊपर सात सौ नब्बे से नौ सौ योजन के बीच एक सौ दस योजन में ज्योतिष्क मण्डल आता है। वहां इनकी पृथ्वियां (विमान) हैं।

प्रश्न १८. वे पृथ्वियां हैं या देव विमान?

उत्तर : आकाश में भ्रमणशील होने के कारण इन्हें विमान कह देते हैं, वस्तुतः वे पृथ्वियां हैं। इन पृथ्वियों पर महल होने का वर्णन भी आता है।

प्रश्न १९. सभी ज्योतिष्क पृथ्वियां भ्रमणशील हैं या स्थिर?

उत्तर : ज्योतिष्क पृथ्वियां भ्रमणशील भी हैं और स्थिर भी। अढ़ाई द्वीप के अन्तर्गत आने वाली समस्त ज्योतिष्क पृथ्वियां भ्रमणशील हैं और अढ़ाई द्वीप के बाहर स्थिर हैं।

प्रश्न २०. ज्योतिष्क के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : इनके पांच प्रकार हैं—

१. सूर्य	२. चन्द्रमा	३. ग्रह
४. नक्षत्र	५. तारा	

प्रश्न २१. वैमानिक देव कहां रहते हैं?

उत्तर : यहां से बहुत ऊंची इनकी पृथ्वियां हैं, उनमें बड़े-बड़े विमान हैं। उनमें विशाल महल बने हुए हैं, उनमें ये देव उत्पन्न होते हैं। ज्योतिष मंडल से ऊपर एक रज्जु जाने पर पहले, दूसरे देवलोक की सीमा शुरू हो जाती है। दक्षिण दिशि में प्रथम व उत्तर दिशि में दूसरे देवलोक के विमानों की श्रेणियां फैली हुई हैं। उनसे ऊपर क्रमशः अन्य वैमानिक देवलोकों के विमान अवस्थित हैं।

प्रश्न २२. वैमानिक के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : इनके कुल छब्बीस प्रकार हैं—

बारह देवलोक

१. सौधर्म	२. ईशान	३. सनत्कुमार
४. माहेन्द्र	५. ब्रह्म	६. लान्तक

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

७. शुक्र	८. सहस्रार	९. आनत
१०. प्राणत	११. आरण	१२. अच्युत

नौ ग्रैवेयक

१. सुदर्शन	२. सुप्रतिबद्ध	३. मनोरम
४. सर्वतोभद्र	५. सुविशाल	६. सुमनस
७. सौमनस	८. प्रियंकर	९. नन्दिकर

पांच अनुत्तर

१. विजय	२. वैजयन्त	३. जयन्त
४. अपराजित	५. सर्वार्थसिद्ध	

प्रश्न २३. क्या इन देवों में शासक और शासित होते हैं?

उत्तर : वैमानिक देवों के जो छब्बीस प्रकार हैं, उनमें बारह प्रकार के देवों में शासक-शासित व्यवस्था है। वहां इन्द्र का एकछत्र राज्य है। अनुशासन भंग करने वालों के लिये वहां कठोर दण्ड की व्यवस्था है। ऊपर के चौदह प्रकारों के देवों में अपनी-अपनी व्यवस्था है, सब अहमिन्द्र हैं। वहां शासक-शासित का सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न २४. वैमानिक देवों का अवधि ज्ञान कितना है?

उत्तर : देखने के तीन कोण होते हैं—ऊंचा, नीचा और तिरछा। पहले देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक के समस्त वैमानिक देव ऊपर में अपने-अपने विमानों पर फहरा रही ध्वजा तक देखते हैं। तिरछे में असंख्य द्वीप समुद्रों को देख लेते हैं। नीचे देखने में उनके अवधि-ज्ञान में अंतर है, वह इस प्रकार है—

देव	नीचे का अवधि ज्ञान	
१, २ देवलोक	प्रथम	नरक के नीचे तक
३, ४ देवलोक	दूसरी	नरक के नीचे तक
५, ६ देवलोक	तीसरी	नरक के नीचे तक
७, ८ देवलोक	चौथी	नरक के नीचे तक
९ से १२ देवलोक	पांचवीं	नरक के नीचे तक
९ ग्रैवेयक-देव	छठी	नरक के नीचे तक
४ अनुत्तर-देव	सातवीं	नरक के नीचे तक
सर्वार्थसिद्ध देव	कुछ कम त्रस नाड़ी	

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २५. किस संहनन वाला कौन से देवलोक में उत्पन्न होता है?

उत्तर : देवलोक　　संहनन

१ से ४ देवलोक	छह	— सभी
५, ६ देवलोक	पांच	— सेवार्त छोड़कर
७, ८ देवलोक	चार	— कीलिका व सेवार्त को छोड़कर
९ से १२ देवलोक	तीन	— अर्धनाराच, कीलिका व सेवार्त को छोड़कर
९ ग्रैवेयक	दो	— वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच
५ अनुत्तर	एक	— वज्रऋषभनाराच

प्रश्न २६. त्रायस्त्रिंशक देव कौन होते हैं? क्या वे सभी जाति के देवों के अन्तर्गत हैं?

उत्तर : त्रायस्त्रिंशक नाम से ही स्पष्ट है कि वे तेतीस होते हैं। वे देवों व इन्द्र के लिए पूज्य होते हैं। वे गुरु, पुरोहित व पिता के समान होते हैं। वे केवल भवनपति व वैमानिक देवों (बारह देवलोक) में होते हैं।

प्रश्न २७. लोकान्तिक देव कौन होते हैं? क्या वे सम्यक्त्वी ही होते हैं?

उत्तर : लोकान्तिक देवों के विमान त्रसनाड़ी के किनारे अवस्थित हैं, इसलिए वे लोकान्तिक कहलाते हैं। इनके विमानों की संख्या नौ है। लोकान्तिक के सभी अधिपति देव सम्यक्त्वी ही होते हैं, ऐसा टीकाकारों का मत है। वे तीर्थंकरों के प्रतिबोध की रस्म अदा करते हैं। लोकांतिक देव पांचवें देवलोक के अंतर्गत आते हैं।

प्रश्न २८. किल्विषिक देव किस जाति के देवों में आते हैं?

उत्तर : भगवती सूत्र के अनुसार इन देवों के उत्पन्न होने का स्थान जघन्य भवनपति उत्कृष्ट छठे लान्तक देवलोक तक है। इस दृष्टि से ये चार ही जाति के देवों के अन्तर्गत हैं, किन्तु स्वतंत्र भेद के रूप में केवल वैमानिक में है।

प्रश्न २९. किल्विषिक देव कौन हैं?

उत्तर : जिन्होंने अपने जीवन में उत्कृष्ट तपस्या व साधना की, पर आभिनिवेशिक मिथ्यात्व का सेवन किया, अरिहंत, चतुर्विध धर्मसंघ तथा ज्ञान दाता का अवर्णवाद, निन्दा की, वे किल्विषिक देव बनते हैं।

प्रश्न ३०. देवों के कितने इन्द्र हैं?

उत्तर : देवों के ६४ इंद्र हैं।

देवों के चार प्रकार हैं—

१. भवनपति — इनके दस प्रकार हैं। इनमें प्रत्येक के उत्तर और दक्षिण में स्वतंत्र भवन हैं। उत्तर और दक्षिण में

© Jain Vishva Bharati　For Personal & Private Use Only　https://books.jvbharati.org

असुरकुमार आदि प्रत्येक भवनपति के एक-एक इन्द्र हैं, इस तरह १० दक्षिण के +१० उत्तर के = २० इन्द्र हैं।

२. व्यंतर — इनके व्यंतर और वाणव्यंतर अभिधा से १६ प्रकार हैं। उत्तर और दक्षिण के दो विभाग से कुल ३२ हो गए । प्रत्येक के एक-एक इन्द्र होने से कुल ३२ इन्द्र हैं।

३. ज्योतिष्क — इनके सूर्य और चन्द्र—ये दो इन्द्र हैं। वैसे तो असंख्य सूर्य-चन्द्र हैं, पर समाहार से दो इन्द्र ही लिए गए हैं।

४. वैमानिक — प्रथम आठ देवलोक के एक-एक इन्द्र हैं। नौवें-दसवें का एक तथा ग्यारहवें-बारहवें का एक संयुक्त इन्द्र हैं, इस तरह बारह देवलोक के दस इन्द्र हैं। नव ग्रैवेयक व पांच अनुत्तर विमान में सभी अहमिन्द्र हैं। इस प्रकार २०+३२+२+१०=६४ इन्द्र हैं।

प्रश्न ३१. सूर्य-चंद्रमा असंख्य हैं, अढ़ाई द्वीप में भी अनेक हैं, फिर तीर्थंकरों के कल्याणक महोत्सव में कौन से सूर्य-चंद्रमा प्रतिनिधित्व करते हैं?

उत्तर : जिस क्षेत्र में तीर्थंकरों का कल्याणक होता है उस क्षेत्र में उस समय में भ्रमण करने वाले सूर्य, चन्द्रमा महोत्सव में सम्मिलित होकर प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्रश्न ३२. क्या अभवी जीव सभी प्रकार के देवों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर : अभवी चार ही प्रकार के देवों में जा सकते हैं। वैमानिक देवों में नौ ग्रैवेयक तक के देवों में उत्पन्न हो सकते हैं। पांच अनुत्तर विमान में वे नहीं जाते। कुछ आचार्यों का अभिमत है कि वे नौ लोकान्तिक देवों में भी नहीं जाते।

प्रश्न ३३. संयमी मुनि कौन से देवों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर : संयमी मुनि के आयुष्य का बंध केवल वैमानिक देवों का ही होता है, इसलिए मुनि केवल वैमानिक देव ही बनते हैं।

प्रश्न ३४. देवता तीर्थंकरों के समवसरण में समय-समय पर आते रहते हैं। शासन भक्त देवी-देवता भी बड़ी संख्या में हैं, फिर भी वे त्याग क्यों नहीं करते हैं?

उत्तर : देवता के संवर धर्म नहीं होता। उनके अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ का उदय रहता है। जहां इनका उदय रहता है वहां संवर हो नहीं सकता।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ३५. शासन अधिष्ठायक देवी-देवताओं का क्या क्रम है? क्या वे पूर्व निश्चित होते हैं या उनका क्रम भिन्न है?

उत्तर : शासन अधिष्ठायक देवी-देवता तीर्थंकरों तथा उनके शासन में साधना करने वाले व्यक्तियों को यथासंभव सहयोग करते हैं। तीर्थंकरों की ख्याति दूर-दूर तक फैलाते हैं। संभवतः विशेष अनुराग से जिस देवी-देवता की अतिशय सेवा रहती है, उसे ही अधिष्ठायक मान लिया जाता है। पहले तीर्थंकर ऋषभदेव की अधिष्ठायक देवी चक्रेश्वरी थी। आगे उत्सर्पिणी काल में जरूरी नहीं कि चक्रेश्वरी देवी ही पहले तीर्थंकर की अधिष्ठायिका हो।

प्रश्न ३६. भगवान् मुनि सुव्रत के शासनकाल में स्कंदक अनगार को पांच सौ शिष्यों के साथ घाणी में पील दिया गया। उस समय शासन देव और देवी कहां गए हुए थे?

उत्तर : अवश्यंभावी नियति को कोई टाल नहीं सकता। देवता भी वहां केवल दर्शक बनकर रह जाते हैं। भगवान् महावीर के समवसरण में उनके ही दो शिष्यों को जिन्दा जला दिया गया। वहां देवता उपस्थित थे, पर उन्होंने कुछ नहीं किया। अवश्यंभावी नियति में किसी का हस्तक्षेप कारगर नहीं होता।

प्रश्न ३७. क्या देव योनि में नींद और वेदनीय का भी विपाकोदय होता है?

उत्तर : देव शरीर में नींद की अपेक्षा नहीं रहती, इसलिए दर्शनावरणीय कर्म की उन प्रकृतियों का विपाकोदय नहीं होता। असात वेदनीय कर्म देव शरीर में सामान्यतः प्रदेशोदय ही होता है, किन्तु कभी-कभी निमित्त पाकर असात वेदनीय का विपाकोदय भी हो सकता है। देवताओं में भी युद्ध होता है। वहां भी गलती करने पर अधिकारी देवों द्वारा प्रताड़ित होना पड़ता है।

प्रश्न ३८. देवताओं का आहार कौन-सा होता है?

उत्तर : देवताओं के रोम आहार होता है। मनुष्य की तरह वे मुख से भोजन नहीं करते। भोजन का भी उनका अपना एक क्रम है। उसके अनुसार ही वे भोजनार्थ पुद्गल खींचते हैं।

प्रश्न ३९. क्या क्षायक सम्यक्त्वी देवता के तीर्थंकर गोत्र का बंध हो सकता है?

उत्तर : औदारिक शरीर में ही तीर्थंकर गोत्र का बंध हो सकता है। वैक्रिय शरीर से तपस्या, ध्यान तथा त्याग-प्रत्याख्यान की साधना नहीं हो सकती, इसलिए तीर्थंकर गोत्र का बंध देवता के नहीं हो सकता।

प्रश्न ४०. नौ ग्रैवेयक व पांच अनुत्तर विमान के देवों के अप्रत्याख्यानी आदि कषाय के बारह भेद उदय में हैं, फिर भी काम प्रचारणा नहीं है, इसका क्या

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कारण है?

उत्तर : देवों में अप्रत्याख्यानी आदि कषाय के बारह भेद उदय में तो रहते हैं, किन्तु मंद रहते हैं। नौ नो कषाय प्रकृतियों की वहां अत्यधिक मंदता रहती है, इसलिये प्रकृतियों का उदय होते हुए भी स्थूल विकार का अभाव है।

प्रश्न ४१. वैमानिक देवलोक के विमानों की संख्या कितनी है?

उत्तर : वैमानिक देवलोक के विमानों की संख्या पृथक्-पृथक् इस प्रकार है—

देवलोक	विमान संख्या
पहला	३२ लाख
दूसरा	२८ लाख
तीसरा	१२ लाख
चौथा	८ लाख
पांचवां	४ लाख
छठा	५० हजार
सातवां	४० हजार
आठवां	६ हजार
नवां, दसवां	४०० (संयुक्त)
ग्यारहवां, बारहवां	३०० (संयुक्त)

नौ ग्रैवेयक

प्रथम तीन	१११
द्वितीय तीन	१०७
अंतिम तीन	१००
अनुत्तर	५

इस प्रकार विमानों की कुल संख्या ८४९७०२३ है।

प्रश्न ४२. देवों में क्षयोपशम के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : देवों में क्षयोपशम के चौबीस प्रकार हैं—

ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से सात — मनःपर्यवज्ञान को छोड़कर
दर्शनावरणीय के क्षयोपशम से आठ — सभी
मोहनीय के क्षयोपशम से तीन — तीन दृष्टियां

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अंतराय के क्षयोपशम से छह — पांच लब्धि व बाल वीर्य
इस प्रकार ७+८+३+६=२४ हैं।

प्रश्न ४३. देवों की स्थिति (आयुष्य) कितनी है?

उत्तर : भवनपति

देव	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
असुरकुमार देव (दक्षिण दिशि)	१० हजार वर्ष	१ सागर
असुरकुमार देवी (दक्षिण)	१० हजार वर्ष	३ $\frac{१}{२}$ पल्य
नौ निकाय देव (दक्षिण)	१० हजार वर्ष	३ $\frac{१}{२}$ पल्य
नौ निकाय देवी (दक्षिण)	१० हजार वर्ष	१ पल्य
असुरकुमार देव (उत्तर दिशि)	१० हजार वर्ष	कुछ अधिक १ सागर
असुरकुमार देवी (उत्तर)	१० हजार वर्ष	४ $\frac{१}{२}$ पल्य
नौ निकाय देव (उत्तर)	१० हजार वर्ष	कुछ कम २ पल्य
नौ निकाय देवी (उत्तर)	१० हजार वर्ष	कुछ कम १ पल्य
व्यंतर		
देव	१० हजार वर्ष	१ पल्य
देवी	१० हजार वर्ष	$\frac{१}{२}$ पल्य
ज्योतिषी		
चन्द्रमा देव	$\frac{१}{४}$ पल्य	१ पल्य १ लाख वर्ष अधिक
चन्द्रमा देवी	$\frac{१}{४}$ पल्य	$\frac{१}{२}$ पल्य ५० हजार वर्ष अधिक
सूर्य देव	$\frac{१}{४}$ पल्य	१ पल्य १ हजार वर्ष अधिक
सूर्य देवी	$\frac{१}{४}$ पल्य	$\frac{१}{२}$ पल्य ५ सौ वर्ष अधिक
ग्रह देव	$\frac{१}{४}$ पल्य	१ पल्य
ग्रह देवी	$\frac{१}{४}$ पल्य	$\frac{१}{२}$ पल्य
नक्षत्र देव	$\frac{१}{४}$ पल्य	$\frac{१}{२}$ पल्य
नक्षत्र देवी	$\frac{१}{४}$ पल्य	$\frac{१}{४}$ पल्य
तारा देव	$\frac{१}{८}$ पल्य	$\frac{१}{८}$ पल्य कुछ अधिक
तारा देवी	$\frac{१}{८}$ पल्य	$\frac{१}{८}$ पल्य

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

वैमानिक देव	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
पहला देवलोक देव	१ पल्य	२ सागर
देवी (परिग्रही)	१ पल्य	७ पल्य
देवी (अपरिग्रही)	१ पल्य	५० पल्य
दूसरा देवलोक देव	कुछ अधिक १ पल्य	कुछ अधिक २ सागर
देवी (परिग्रही)	कुछ अधिक १ पल्य	९ पल्य
देवी (अपरिग्रही)	कुछ अधिक १ पल्य	५५ पल्य
तीसरा देवलोक[1]	२ सागर	७ सागर
चौथा	कुछ अधिक २ सागर	कुछ अधिक ७ सागर
पांचवां	७ सागर	१० सागर
छठा	१० सागर	१४ सागर
सातवां	१४ सागर	१७ सागर
आठवां	१७ सागर	१८ सागर
नौवां	१८ सागर	१९ सागर
दसवां	१९ सागर	२० सागर
ग्यारहवां	२० सागर	२१ सागर
बारहवां	२१ सागर	२२ सागर
पहला ग्रैवेयक	२२ सागर	२३ सागर
दूसरा ग्रैवेयक	२३ सागर	२४ सागर
तीसरा ग्रैवेयक	२४ सागर	२५ सागर
चौथा ग्रैवेयक	२५ सागर	२६ सागर
पांचवां ग्रैवेयक	२६ सागर	२७ सागर
छठा ग्रैवेयक	२७ सागर	२८ सागर
सातवां ग्रैवेयक	२८ सागर	२९ सागर
आठवां ग्रैवेयक	२९ सागर	३० सागर
नौवां ग्रैवेयक	३० सागर	३१ सागर
पहले से चौथा अनुत्तर	३१ सागर	३३ सागर
सर्वार्थसिद्ध	३३ सागर	३३ सागर

१. यहां से केवल देव ही होते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ४४. देवलोक से देव च्युत (मर कर) होकर कहां-कहां जाते हैं?

उत्तर : देवलोक से देव च्युत होकर पुनः देव व नारक नहीं बनते। भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी, पहले व दूसरे देवलोक के देव च्युत होकर १५ कर्मभूमि मनुष्य, ५ सन्नी तिर्यंच, पृथ्वीकाय, अप्काय व वनस्पतिकाय में उत्पन्न होते हैं।

तीसरे से आठवें देवलोक के देव १५ कर्मभूमि मनुष्य व ५ सन्नी तिर्यंच में उत्पन्न होते हैं।

नौवें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध तक मात्र १५ कर्मभूमि मनुष्य होते हैं।

२. मनुष्य गति

प्रश्न १. मनुष्य किसे कहते हैं?

उत्तर : जिसमें मनन करने की क्षमता हो, मनुष्य नामकर्म की प्रकृति का उदय हो, उसे मनुष्य कहते हैं।

प्रश्न २. मनुष्य गति किसे कहते हैं?

उत्तर : मनुष्य योनि प्राप्त करने की प्रक्रिया को मनुष्य गति कहते हैं।

प्रश्न ३. मनुष्य के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : मनुष्य के दो प्रकार हैं—

१. संमूर्च्छिम २. गर्भज।

प्रश्न ४. संमूर्च्छिम मनुष्य का क्या स्वरूप है?

उत्तर : संज्ञी-समनस्क मनुष्य के मल-मूत्र आदि चौदह स्थानों में जो उत्पन्न होते हैं, उन्हें संमूर्च्छिम मनुष्य कहते हैं।

प्रश्न ५. उत्पत्ति के चौदह स्थान कौन से हैं?

उत्तर : समनस्क स्त्री, मनुष्य के निम्नोक्त चौदह स्थानों में ये अमनस्क जीव उत्पन्न होते हैं— (१) मल, (२) मूत्र, (३) श्लेष्म, (४) खंखार, (५) वमन, (६) पित्त, (७) पीव, (८) शुक्र, (९) शोणित, (१०) सूखा शुक्र (पुनः गीला हुआ), (११) कलेवर (मृतशरीर), (१२) स्त्री-पुरुष संयोग, (१३) नगर का कीचड़, (१४) सर्व अशुचि स्थान।

प्रश्न ६. इन्हें मनुष्य क्यों कहा गया?

उत्तर : मनुष्य नामकर्म की प्रकृति का उदय रहने के कारण उन्हें मनुष्य कहा गया है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ७. उनका आयुष्य कितना है?

उत्तर : उनका आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्त का है। उनके अड़तालीस मिनिट की अवधि में बारह बार जन्म-मरण हो जाता है।

प्रश्न ८. क्या वे पर्याप्त होते हैं?

उत्तर : वे पर्याप्त नहीं होते, अपर्याप्त अवस्था में ही मर जाते हैं।

प्रश्न ९. गर्भज मनुष्य के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : गर्भज मनुष्य के तीन प्रकार हैं—

१. कर्मभूमिज २. अकर्मभूमिज ३. अन्तर्द्वीपज

प्रश्न १०. कर्मभूमि किसे कहते हैं?

उत्तर : जिस क्षेत्र के निवासियों को पेट भरने के लिए कुछ कर्म-पुरुषार्थ करना होता है, उसे कर्मभूमि कहते हैं, उसे धर्मभूमि भी कहते हैं। पांच भरत, पांच एरावत, पांच महाविदेह—ये १५ क्षेत्र कर्मभूमि हैं।

प्रश्न ११. तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि तिरेसठ शलाकापुरुष कहां होते हैं?

उत्तर : सभी शलाकापुरुष कर्मभूमि क्षेत्र में होते हैं। राजा-प्रजा आदि की व्यवस्था कर्म-भूमि क्षेत्रों में ही होती है।

प्रश्न १२. क्या कर्मभूमि क्षेत्रों में राजा-प्रजा की व्यवस्था सदैव रहती है?

उत्तर : पांच महाविदेह क्षेत्रों में यह व्यवस्था सदैव रहती है। पांच भरत एवं पांच एरावत क्षेत्रों में यह व्यवस्था अवसर्पिणी[1] काल के तीसरे, चौथे, पांचवें अर में तथा उत्सर्पिणी[2] काल के दूसरे, तीसरे और चौथे अर[3] में रहती हैं।

प्रश्न १३. अकर्मभूमि किसे कहते हैं?

उत्तर : जिस क्षेत्र के निवासियों को पेट भरने के लिए पुरुषार्थ करने की अपेक्षा नहीं रहती, जैसे—खेती, व्यवसाय आदि। जिनकी हर आवश्यकता की पूर्ति कल्पवृक्षों[4] से हो जाती है, उसे अकर्मभूमि कहते हैं। युगल साथ में जन्मने से उस क्षेत्र के निवासियों को यौगलिक कहते हैं।

---

१. २. ३. अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी—ये कालचक्र के अलग-अलग १०-१० करोड़ाकरोड़ सागर समय वाले हैं। इन दो के मिलने से २० करोड़ाकरोड़ सागर का कालचक्र बनता है। सर्प के मुंह से पूंछ तक शरीर क्रमशः पतला होता है। वैसे ही अवसर्पिणी में इसके छह अर (विभाग) क्रमशः समय की दृष्टि से छोटे होते चले जाते हैं। उत्सर्पिणी में सर्प के पूंछ से मुंह तक के बढ़ते मोटेपन की भांति छह अर बड़े होते जाते हैं।

४. बारहमासी फल देने वाला सदाबहार वृक्ष, इसे देव वृक्ष भी कहते हैं। यौगलिक काल में दस प्रकार के कल्पवृक्ष हुआ करते थे जिनसे यौगलिकों की भोजन, आवास, प्रकाश आदि जीवनोपयोगी अपेक्षाओं की पूर्ति होती थी।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न १४. अकर्मभूमि में कितने क्षेत्र हैं?

उत्तर : अकर्मभूमि में देवकुरु, उत्तरकुरु, हरिवास, रम्यक्वास, हेमवय, अरुणवय—ये छह नाम हैं। प्रत्येक नाम के पांच-पांच क्षेत्र हैं, इस तरह कुल तीस क्षेत्र हो गये।

प्रश्न १५. अकर्मभूमि एक जगह है या अलग-अलग क्षेत्रों में है?

उत्तर : अकर्मभूमि एक जगह नहीं, अलग-अलग क्षेत्रों में हैं। तीन कर्मभूमि भरत, एरावत, महाविदेह—इन तीनों के बीच उपरोक्त छह-छह क्षेत्र हैं। इस क्रम से जंबूद्वीप[1] में छह, धातकी खण्ड[2] द्वीप में बारह और अर्धपुष्कर द्वीप में बारह क्षेत्र हैं।

प्रश्न १६. अकर्मभूमि के क्षेत्रों में उत्पन्न यौगलिकों का आयुष्य व अवगाहना समान है या अलग-अलग?

उत्तर : अकर्मभूमि में उत्पन्न यौगलिकों का आयुष्य व अवगाहना (शरीर की लम्बाई) समान नहीं, पृथक्-पृथक् है, वह इस प्रकार है—

यौगलिक	आयुष्य	अवगाहना
देवकुरु, उत्तरकुरु	३ पल्योपम	३ कोस
हरिवास, रम्यक्वास	२ पल्योपम	२ कोस
हेमवय, अरुणवय	१ पल्योपम	१ कोस

प्रश्न १७. इन क्षेत्रों के मनुष्यों का भोजन कैसा है?

उत्तर : इन क्षेत्रों का भोजन वनस्पति का है। कल्पवृक्षों का फल ही वहां का मुख्य आहार है। उन क्षेत्रों में कोई मांसाहारी नहीं होता। उनके भोजन का क्रम इस प्रकार है—पांच देवकुरु, पांच उत्तरकुरु के यौगलिकों का आहार तीन दिन से होता है। एक दिन भोजन कर लेने के बाद तीन दिन तक उन्हें भूख ही नहीं लगती। आहार की मात्रा भी उनकी बहुत थोड़ी होती है। एक चने जितना आहार उनके लिये पर्याप्त है। एक चने जितने भोजन में इतने तत्त्व विद्यमान रहते हैं कि तीन दिन तक उनके दीर्घकाय शरीर के लिये पर्याप्त है। पांच हरिवास, पांच रम्यक्वास के यौगलिक दो दिन से भोजन करते हैं। इनके भोजन की मात्रा बोर जितनी है। पांच हेमवय, पांच अरुणवय क्षेत्र के यौगलिक एक दिन के अन्तराल से भोजन करते हैं। इनके आहार की मात्रा आंवले जितनी है।

प्रश्न १८. अकर्मभूमि में उत्पन्न बच्चों का पालन-पोषण कैसे होता है?

उत्तर : अकर्मभूमि में उत्पन्न बच्चों का पालन-पोषण उनके माता-पिता के द्वारा होता

१. जैन भूगोल में सबसे छोटा एक लाख योजन का द्वीप।

२. जंबूद्वीप से चार गुना बड़ा व लवण समुद्र व कालोदधि समुद्र का मध्यवर्ती द्वीप।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

है। पांच देवकुरु, उत्तरकुरु क्षेत्र के बच्चों का उनपचास रात्रि तक पालन-पोषण करना होता है। इतने कालमान में वे युवा बन जाते हैं। पांच हरिवास, रम्यक्वास के बच्चों का पालन तिरेसठ रात्रियों तक होता है। पांच हेमवय, अरुणवय के बच्चों का पालन उनियासी रात्रियों तक होता है।

प्रश्न १९. इन क्षेत्रों के उत्पन्न यौगलिकों का पारिवारिक सम्बन्ध क्या है?

उत्तर : वहां पारिवारिक संबंध केवल पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र-पुत्री तक सीमित है। जीवन के आखिरी समय में एक युगल का जन्म होता है। क्रमशः ४९, ६३, ७९ रात्रियों तक बच्चों का पालन करने के बाद उनकी मृत्यु हो जाती है।

प्रश्न २०. अकर्मभूमि के मनुष्य मरकर कहां जाते हैं?

उत्तर : वे देव बनते हैं। उनकी गति देवत्व की है। तीन पल्योपम तक की स्थिति वाले देव बन सकते हैं।

प्रश्न २१. मरने के बाद उनके शरीर का अंतिम संस्कार कैसे होता है?

उत्तर : मरने के बाद उनका शरीर कपूर की भांति स्वतः बिखर जाता है या भारंड आदि पक्षी अन्यत्र ले जाते हैं। निर्जीव शरीर वहां टिकता नहीं है। उनके शरीर का अग्नि संस्कार या जमीन में दफनाना आदि उपक्रम नहीं है।

प्रश्न २२. छप्पन अन्तर्द्वीप कहां हैं?

उत्तर : जंबूद्वीप में दो विशिष्ट पर्वत हैं चुल्ल-हिमवान् और शिखरी। ये दोनों पर्वत जंबूद्वीप में पूर्व-पश्चिम में फैले हुए हैं। दोनों का कुछ हिस्सा पूर्व और पश्चिम में लवण समुद्र में गया हुआ है। दोनों पर्वतों की समुद्र में दाढ़ानुमा दो-दो पर्वत शृंखला पूर्व-पश्चिम दोनों ओर निकली हुई हैं। चार चुल्ल-हिमवान् पर्वत की और चार शिखरी पर्वत की श्रेणियां हैं। एक-एक श्रेणी पर सात-सात द्वीप हैं। इस प्रकार ८ पर्वत श्रेणी×७ द्वीप=५६ अन्तर्द्वीप हो जाते हैं। कई इन्हें इन पर्वतों की ठीक सीध में लवण समुद्र में तीन सौ योजन जाने के बाद क्रमशः सात-सात उभरे हुए दाढ़ानुमा द्वीप मानते हैं। उन पर जो मनुष्य रहते हैं, वे अन्तर्द्वीपज कहलाते हैं। उनका स्वरूप अकर्मभूमि की भांति ही समझना चाहिए। वे भी यौगलिक हैं, उनकी भी कल्पवृक्षों से आवश्यकता पूरी होती है।

प्रश्न २३. अकर्मभूमि और अन्तर्द्वीप के मनुष्यों में क्या चारित्र होता है?

उत्तर : नहीं, उनमें कोई साधु या श्रावक नहीं होता। वे सहज जीवन जीने वाले होते हैं। न वे ज्यादा पाप करते और न ही क्रियात्मक धर्म।

प्रश्न २४. अकर्मभूमि और अन्तर्द्वीप के मनुष्यों में क्या सम्यक्त्व होती है?

उत्तर : अकर्मभूमि के मनुष्यों में सम्यक्त्व हो सकती है। अन्तर्द्वीप के मनुष्यों में इतना बोध नहीं होता, अतः वे सम्यक्त्वी नहीं होते।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २५. पैंतालीस लाख योजन प्रमाण इस मनुष्य क्षेत्र से कहीं भी सिद्ध हो सकता है, ऐसा माना गया है। जबकि चारित्र केवल पन्द्रह क्षेत्रों में है, फिर सब जगह मुक्त कैसे बनते होंगे?

उत्तर : चारित्र तो केवल पन्द्रह कर्मभूमि के आर्य क्षेत्र में ही होता है। बहुत सीमित क्षेत्र में संयम की साधना करने वाले होते हैं, किन्तु मुक्त होने का क्षेत्र पैंतालीस लाख योजन है। अन्य स्थान में लब्धि से मुनि जा सकते हैं। समुद्र, नदी, नालों, झीलों में दुश्मन देव द्वारा फेंक दिये जाते हैं। मुनि वहीं पर ध्यानारूढ़ अवस्था में सर्वज्ञ बनकर मुक्त हो जाते हैं।

प्रश्न २६. मनुष्य भव को मोक्ष का द्वार क्यों कहा? क्या अन्य योनि से कोई मुक्त नहीं हो सकता?

उत्तर : मुक्त होने के लिए चारित्र की साधना जरूरी है। इसके बिना सर्वज्ञता नहीं मिलती, सर्वज्ञता के बिना मोक्ष नहीं होता। चारित्र की साधना मनुष्य शरीर से ही की जा सकती है। अन्य शरीर चारित्र की साधना की दृष्टि से अनुपयुक्त है, इसलिए मोक्ष का द्वार मनुष्य भव को कहा गया है।

प्रश्न २७. मनुष्य में निर्जरा के भेद कितने हैं?

उत्तर : समनस्क मनुष्य में निर्जरा के बारह ही भेद पाते हैं, जबकि अमनस्क मनुष्य में एक कायक्लेश का भेद पाता है।

३. तिर्यंच गति

प्रश्न १. तिर्यंच गति किसे कहते हैं?

उत्तर : अधिकतर तिर्यक्लोक (मध्य लोक) में जो जीवन यापन करते हैं, उन्हें तिर्यंच कहते हैं। वैसे तिर्यंच गति के जीव पूरे लोक में व्याप्त हैं, किन्तु त्रस तिर्यंच अधिकतर तिर्यक्लोक में ही मिलते हैं।

प्रश्न २. क्या ऊर्ध्व और अधःलोक में भी त्रस जीव (तिर्यंच) हैं?

उत्तर : ऊर्ध्व व अधःलोक में त्रस जीव हैं। महाविदेह की दो विजय एक हजार योजन नीचे गई हुई हैं। वहां सभी तरह के त्रस जीव हैं। ऊर्ध्व लोक में लवण समुद्र की बेल का पानी सोलह हजार योजन ऊपर तक जाता है। उसमें जलचर जीव होते हैं। नन्दनवन, पंडुक वन में पक्षी आदि त्रस जीव होते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ३. तिर्यंच के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : तिर्यंच के दो प्रकार हैं—

१. स्थावर २ त्रस

स्थावर के पांच प्रकार हैं—

१. पृथ्वीकाय २. अप्काय ३. तेजस्काय
४. वायुकाय ५. वनस्पतिकाय

त्रस के चार प्रकार हैं—

१. द्वीन्द्रिय २. त्रीन्द्रिय ३. चतुरिन्द्रिय
४. पंचेन्द्रिय

पंचेन्द्रिय के पांच प्रकार हैं—

१. जलचर[१] २. स्थलचर[२] ३. उरपरिसर्प[३]
४. भुजपरिसर्प[४] ५. खेचर[५]

प्रश्न ४. तिर्यंच में कितनी इन्द्रिय वाले जीव हैं?

उत्तर : तिर्यंच में पांचों ही इन्द्रिय वाले जीव हैं। जैसे—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

प्रश्न ५. तिर्यंच में जीवों की संख्या कितनी हैं?

उत्तर : अनन्त-अनन्त जीव तिर्यंच गति में होते हैं। पूरे लोक में जीवों का अखूट खजाना तिर्यंच गति कहलाती है। यहां से जीव दूसरी गतियों और योनियों में जाते हैं। अन्य योनियों की अपेक्षा तिर्यंच गति में जीव बहुत अधिक समय तक रहते हैं। अनन्त काल तक केवल तिर्यंच गति में ही जीव रहता है।

प्रश्न ६. तिर्यंच का आयुष्य पुण्य-प्रकृति है या पाप-प्रकृति?

उत्तर : तिर्यंच का आयुष्य दोनों माना गया है। तिर्यंच में भी कई पुण्य प्रकृतियों का उदय हो सकता है, किन्तु अधिकतर तिर्यंच पाप प्रकृति के उदय से होते हैं।

---

१. पानी में रहनेवाले मच्छ आदि।
२. पृथ्वी पर चलते रहने वाले हाथी, गाय, शेर आदि जीव।
३. पेट के बल रेंगने वाले सर्प आदि।
४. भुजाओं के बल से चलने वाले नेवला, गोह आदि।
५. आकाश में उड़ने वाले। इनमें मुख्य रूप से रोम व चमड़े के पंख वाले होते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ७. तिर्यंच में दण्डक कितने होते हैं?

उत्तर : तिर्यंच में कुल नौ दण्डक होते हैं—पांच स्थावर काय, तीन विकलेन्द्रिय, एक तिर्यंच पंचेन्द्रिय (१२ से २० तक)।

प्रश्न ८. तिर्यंच में गुणस्थान कितने होते हैं?

उत्तर : तिर्यंच में पांच गुणस्थान होते हैं—प्रथम पांच।

प्रश्न ९. तिर्यंच श्रावक बारहव्रती होते हैं?

उत्तर : तिर्यंच श्रावक बारहव्रती नहीं, ग्यारहव्रती होते हैं। उनके बारहवां व्रत नहीं होता, क्योंकि सुपात्र दान देने के लिए उनके पास कुछ नहीं होता।

प्रश्न १०. क्या तिर्यंच श्रावक सुपात्र दान की दलाली कर सकता है?

उत्तर : तिर्यंच श्रावक सुपात्र दान की दलाली कर सकता है। बलभद्र मुनि के जीवन में एक प्रसंग आता है कि एक हिरण जाति के श्रावक ने दान की दलाली की थी।

प्रश्न ११. क्या जलचर तिर्यंच श्रावक सामायिक, पौषध कर सकते हैं?

उत्तर : जलचर श्रावक सामायिक, पौषध आदि व्रतों की उपासना कर सकते है। पानी में भी स्थिर रहकर वे सामायिक आदि करते हैं, ऐसा आचार्यों का अभिमत है।

प्रश्न १२. तिर्यंच में अधिकतम कितने उपयोग होते हैं?

उत्तर : नौ उपयोग होते हैं—

तीन ज्ञान	—	मति, श्रुत, अवधि।
तीन अज्ञान	—	मति, श्रुत, विभंग।
तीन दर्शन	—	चक्षु, अचक्षु, अवधि।

प्रश्न १३. क्या तिर्यंच में क्षायिक सम्यक्त्व हो सकती है?

उत्तर : तिर्यंच में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हो सकती। वहां क्षायोपशमिक सम्यक्त्व हो सकती है।

प्रश्न १४. तिर्यंच में निर्जरा के भेद कितने हैं?

उत्तर : समनस्क तिर्यंच में सभी १२ भेद तथा अमनस्क तिर्यंच में एक कायक्लेश का भेद पाता है।

प्रश्न १५. तिर्यंच में क्षयोपशम के कितने प्रकार होते हैं?

उत्तर : तिर्यंच में क्षयोपशम के छब्बीस प्रकार होते हैं—

ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से सात — मनःपर्यव ज्ञान को छोड़कर
दर्शनावरणीय के क्षयोपशम से आठ — सभी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मोहनीय के क्षयोपशम से चार — चार चारित्र छोड़कर
अन्तराय के क्षयोपशम से सात — पंडित वीर्य को छोड़कर
इस प्रकार ७+८+४+७=२६

प्रश्न १६. अनन्तकाय क्या है?

उत्तर : अनन्तकाय तिर्यंच गति का ही भेद है। स्थावर के अन्तर्गत बादर वनस्पतिकाय के दो भेद हैं—१. प्रत्येक २. साधारण।

१. प्रत्येक — जिसके एक शरीर में एक जीव हो वह प्रत्येक वनस्पति है, जैसे—वृक्ष, लता, तृण, अनाज आदि।

२. साधारण — जहां एक शरीर में अनन्त जीव हों, वह साधारण वनस्पति है। जितने भी कंदमूल हैं, वे साधारण हैं।

प्रश्न १७. साधारण वनस्पति के शरीर कितने छोटे होते हैं?

उत्तर : सूई के अग्रभाग जितने कंदमूल की असंख्य श्रेणियां हैं। प्रत्येक श्रेणी के असंख्य प्रतर और एक-एक प्रतर जितने कंद के असंख्य गोलक किये जाते हैं। फिर एक-एक गोलक जितने कंद में असंख्य शरीर होते हैं। उसके एक-एक शरीर में अनन्त-अनन्त जीव रहते हैं।

प्रश्न १८. इतने छोटे शरीर में अनन्त जीव कैसे रहते होंगे?

उत्तर : इतने छोटे शरीर में रहते क्या हैं! वे जन्मते ही मर जाते हैं।

प्रश्न १९. उनका आयुष्य कितना है?

उत्तर : वे एक मुहूर्त्त समय में उत्कृष्ट ६५,५३६ बार जन्म-मरण कर लेते हैं।

प्रश्न २०. अन्य योनियों के जीव एक मुहूर्त्त में कितने जन्म-मरण कर सकते हैं?

उत्तर : पृथ्वी, पानी, अग्नि व वायुकाय के जीव १२८२४ बार जन्म-मरण कर सकते हैं। प्रत्येक वनस्पति के ३२०००, द्वीन्द्रिय के ८०, त्रीन्द्रिय के ६०, चतुरिन्द्रिय के ४०, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के २४ बार और संज्ञी पंचेन्द्रिय के जीव एक बार जन्म-मरण कर सकते हैं।

प्रश्न २१. इतने स्वल्प आयुष्य में क्या निगोद के जीव पर्याप्त हो जाते हैं?

उत्तर : जो निगोद के जीव ६५,५३६ भव करते हैं, वे पर्याप्त होते ही नहीं हैं। पर्याप्त होने में न्यूनतम प्रथम चार पर्याप्तियों का पूर्ण होना जरूरी है। तीन पर्याप्तियां तो वे पूर्ण कर लेते हैं, चौथी पर्याप्ति के पूर्ण होने से पहले ही उनका आयुष्य सम्पन्न हो जाता है, अतः वे अपर्याप्त ही होते हैं। जो अनंतकायिक जीव इनसे कम भव करते हैं वे पर्याप्त भी हो सकते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २२. एक शरीर में उत्पन्न होने वाले अनन्त जीव क्या एक साथ जन्म-मरण करते हैं?

उत्तर : एक शरीर में उत्पन्न होने वाले उन अनन्त जीवों का एक साथ ही जन्म-मरण होता है।

प्रश्न २३. क्या अनन्तकायिक जीवों में भी उपयोग होता है?

उत्तर : न्यूनतम क्षयोपशम अनन्तकायिक जीवों में भी माना है। उनमें उपयोग तीन होते हैं—मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, अचक्षु दर्शन।

प्रश्न २४. वे किस राशि के अन्तर्गत हैं?

उत्तर : राशि दो प्रकार की हैं—(१) व्यवहार राशि (२) अव्यवहार राशि।
ये अनन्तकायिक जीव दोनों राशि के अन्तर्गत हैं।

प्रश्न २५. कई विकलेन्द्रिय जीवों में संयोग से जन्म होता है, फिर उन्हें संमूर्च्छिम कैसे माना जाये?

उत्तर : जीव के दो प्रकार हैं—(१) समनस्क (२) अमनस्क। विकलेन्द्रिय अमनस्क होते हैं। अमनस्क जीवों के संभोग नहीं होता, पर संभोग जैसी क्रिया करते हैं। एक-दूसरे के स्पर्श से कुछ जीव पैदा होते हैं, किन्तु वे गर्भज नहीं हैं।

प्रश्न २६. चींटियों आदि के भी अण्डे होते हैं, फिर उन्हें संमूर्च्छिम कैसे कहते हैं?

उत्तर : बरसात आदि के समय चींटियों के मुंह में जो सफेद-सफेद वस्तु देखते हैं, भाषा में उसे अण्डा कहते हैं, वस्तुतः वह अण्डा नहीं है। जीव उसके संसर्ग से अपने शरीर का निर्माण कर लेता है, किन्तु वह गर्भज नहीं है।

प्रश्न २७. संभोग और संयोग में क्या अंतर है?

उत्तर : संभोग से शरीर में तत्त्वों की क्षीणता होती है। संयोग में कुछ क्षीण नहीं होता, केवल मिलन होता है।

४. नरक गति

प्रश्न १. नरक किसे कहते हैं?

उत्तर : 'नरान् कांयति शब्दयंति' जहां क्रंदन होता है, उस स्थान को नरक कहते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २. नरक के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : नरक के सात प्रकार हैं—

(१) घम्मा (२) वंशा (३) सेला (४) अंजना
(५) रिष्टा (६) मघा (७) माघवती।

प्रश्न ३. क्या इनका कोई गोत्र भी है?

उत्तर : इनका गोत्र है। जिन पृथ्वियों की जैसी आभा है, उसी के अनुरूप गोत्र संज्ञा दी गई है। वे हैं—

(१) रत्नप्रभा (२) शर्कराप्रभा (३) बालुप्रभा (४) पंकप्रभा
(५) धूमप्रभा (६) तमप्रभा (७) तमतमाप्रभा।

प्रश्न ४. ये सात नरक कहां हैं?

उत्तर : मध्यलोक के पृथ्वीतल से नीचे क्रमशः एक के बाद एक विशाल पृथ्वियां हैं। जहां हम रह रहे हैं, वह पहली रत्नप्रभा पृथ्वी की छत है। इसके भीतर भी कई प्रतर हैं, अलग-अलग पोलार हैं, उनमें नरकावास हैं। इसी तरह आगे की पृथ्वियों में हैं।

प्रश्न ५. ये पृथ्वियां किसके आधार पर टिकी हुई हैं?

उत्तर : ये पृथ्वियां सघन (ठोस) उदधि पर टिकी हुई हैं। सघन उदधि वायु पर तथा वायु आकाश पर टिकी हुई है।

प्रश्न ६. सातों पृथ्वियां शाश्वत हैं या अशाश्वत?

उत्तर : दोनों हैं। द्रव्य रूप से शाश्वत हैं, किन्तु पुद्गलों का चय-अपचय होता रहता है, इस दृष्टि से अशाश्वत हैं।

प्रश्न ७. प्रत्येक नरक के कितने नरकावास हैं?

उत्तर : १. रत्नप्रभा ३० लाख
२. शर्कराप्रभा २५ लाख
३. बालुप्रभा १५ लाख
४. पंकप्रभा १० लाख
५. धूमप्रभा ३ लाख
६. तमप्रभा पांच कम १ लाख
७. तमतमाप्रभा ५

इस प्रकार ८४ लाख नरकावास हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ८. इन पृथ्वियों की लम्बाई व चौड़ाई कितनी है?

उत्तर : इन सातों पृथ्वियों की लम्बाई व चौड़ाई असंख्य योजन की है।

प्रश्न ९. इन पृथ्वियों की मोटाई कितनी है?

उत्तर : इन पृथ्वियों की मोटाई इस प्रकार है—

१.	रत्नप्रभा	१,८०,०००	योजन
२.	शर्कराप्रभा	१,३२,०००	योजन
३.	बालुप्रभा	१,२८,०००	योजन
४.	पंकप्रभा	१,२०,०००	योजन
५.	धूमप्रभा	१,१८,०००	योजन
६.	तमप्रभा	१,१६,०००	योजन
७.	तमतमाप्रभा	१,०८,०००	योजन

प्रश्न १०. नरकों में अन्तर व प्रतर कितने हैं तथा अंतरों की ऊंचाई कितनी है?

उत्तर :

नरक	अन्तर[1]	प्रतर[2]	अंतर की ऊंचाई (पोलार)
१.	१२	१३	११,५८३ योजन तथा एक योजन का तीसरा भाग
२.	१०	११	९७०० योजन
३.	८	९	१२,३७५ योजन
४.	६	७	१६,१६६ योजन
५.	४	५	२५,२५० योजन
६.	२	३	५२,५०० योजन
७.	—	१	.....

प्रश्न ११. क्या नरक की पृथ्वियां लोकान्त तक चली गईं?

उत्तर : नरक की पृथ्वियां लोकान्त तक नहीं गई हैं। नरक में ऊपर-नीचे अलोक नहीं आता है, किंतु तिरछी दिशाओं में इनके अलोक काफी निकट हैं। उसका क्रम इस प्रकार है—

नरक	लोकान्त
१.	१२ योजन
२.	१२ योजन तथा एक योजन का दो-तिहाई भाग

१.२. मकान में जैसे मंजिल होती है वैसे ही नरकों में अंतर होते हैं। मकान में दो मंजिल के बीच छत होती है वैसे ही दो अंतर के बीच प्रतर होता है। ये प्रतर ३००० योजन चौड़े होते हैं। इनमें ऊपर-नीचे १०००-१००० योजन के ठोस भागों को छोड़कर मध्य के १००० योजन पोलार में नरकावास हैं और अंतरों में भवनपति देव हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

नरक	लोकान्त
३.	१३ योजन तथा एक योजन का एक-तिहाई भाग
४.	१४ योजन
५.	१४ योजन तथा एक योजन का दो-तिहाई भाग
६.	१५ योजन तथा एक योजन का एक-तिहाई भाग
७.	१६ योजन

प्रश्न १२. नारक जीवों का अवधि या विभंग अज्ञान कितना है?

उत्तर :

नरक	जघन्य	उत्कृष्ट
१.	३ $\frac{१}{२}$ कोस	४ कोस
२.	३ कोस	३ $\frac{१}{२}$ कोस
३.	२ $\frac{१}{२}$ कोस	३ कोस
४.	२ कोस	२ $\frac{१}{२}$ कोस
५.	१ $\frac{१}{२}$ कोस	२ कोस
६.	१ कोस	१ $\frac{१}{२}$ कोस
७.	$\frac{१}{२}$ कोस	१ कोस

प्रश्न १३. नारक जीवों की स्थिति कितनी है?

उत्तर :

नरक	न्यूनतम स्थिति	अधिकतम स्थिति
१.	१० हजार वर्ष	१ सागर
२.	१ सागर	३ सागर
३.	३ सागर	७ सागर
४.	७ सागर	१० सागर
५.	१० सागर	१७ सागर
६.	१७ सागर	२२ सागर
७.	२२ सागर	३३ सागर

प्रश्न १४. किस संहनन वाला जीव कौन सी नरक में जाता है?

उत्तर :

नरक	संहनन
१,२	छह — सभी
३	पांच — सेवार्त को छोड़कर
४	चार — कीलिका, सेवार्त को छोड़कर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

५	तीन — अर्धनाराच, कीलिका, सेवार्त को छोड़कर
६	दो — वज्रऋषभनाराच ऋषभनाराच
७	एक — वज्रऋषभनाराच

प्रश्न १५. कौन किस नरक से आगे उत्पन्न नहीं होते हैं?

उत्तर :

नरक	जीव
१ से आगे	अमनस्क तिर्यंच
२ से आगे	समनस्क भुजपरिसर्प
३ से आगे	समनस्क खेचर
४ से आगे	समनस्क स्थलचर
५ से आगे	समनस्क उरपरिसर्प
६ से आगे	समनस्क स्त्री
७ तक	समनस्क जलचर व मनुष्य

प्रश्न १६. नरकावासों में गंध कैसी है?

उत्तर : नरकावासों में मरी हुई गाय, भैंस, बिल्ली, सर्प, हाथी आदि के शरीर से निकलने वाली दुर्गंध से भी भयंकर दुर्गंध परिव्याप्त रहती है।

प्रश्न १७. नरक की दीवारों का स्पर्श कैसा है?

उत्तर : नरक की दीवारों का असिपत्र, क्षुरपत्र, कुन्ताग्र, तोमराग्र से भी अनन्त गुणा अधिक तीक्ष्ण स्पर्श है।

प्रश्न १८. इन पृथ्वियों में बादर अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य आदि का प्रकाश है?

उत्तर : बादर-स्थूल अग्नि, चन्द्र, सूर्य आदि का प्रकाश इनमें नहीं है। सातों नरकों में घोर अंधकार व्याप्त है।

प्रश्न १९. क्या नरकों में देवों का आवागमन होता है?

उत्तर : नरकों में देवों का आवागमन होता है। परमाधार्मिक (भवनपतिदेव-असुरकुमार की उपजाति) तीसरी नरक तक जाते हैं। वैमानिक देव आगे भी जा सकते हैं, वे केवल मित्र आदि से मिलने के लिए जाते हैं।

प्रश्न २०. परमाधार्मिक देव तीन नरक तक जाते हैं, आगे चार नरकों में कष्टानुभूति कैसे होती है?

उत्तर : अगली चार नरकों में क्षेत्रीय वेदना तथा परस्परोदीरित वेदना होती है। क्रमशः नरकों में स्थिति तथा वेदना अधिक मानी गई है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २१. परमाधार्मिक देवता कितने प्रकार के हैं?

उत्तर : परमाधार्मिक देवता पन्द्रह प्रकार के हैं—अंब, अंबरीस, शाम, सबल, रूद्र, वैरूद्र, काल, महाकाल, असिपत्र, धनुष्य, कुंभ, बालु, वेतरणी, खरस्वर और महाघोष।

प्रश्न २२. वे नरक में ही क्यों जाते हैं?

उत्तर : परमाधार्मिक देव कुतूहली एवं क्रूर स्वभावी होते हैं, उनका क्रीड़ा स्थल नरक क्षेत्र है। किसी को मारना, पीटना, उछालना, उत्पीड़ित करना ही उनकी क्रीड़ा है।

प्रश्न २३. नरक में कष्ट देने वाले इन देवों के भी कर्मबंध होता होगा?

उत्तर : होता है। उन कर्मों से प्रेरित होकर बहुधा सूअर, गधा आदि पशु योनियों में उत्पन्न होते हैं। वहां विविध दुःख भोगते हैं। वहां से अनेक जीव नरक में उत्पन्न होकर कृत कर्मों को भोगते हैं।

प्रश्न २४. नरकायु बंध के कितने कारण हैं?

उत्तर : नरक में उत्पन्न होने के मूल चार कारण हैं—

१. महाआरम्भ २. महापरिग्रह ३. पंचेन्द्रिय वध ४. मांसाहार

प्रश्न २५. नरक में निर्जरा के कितने भेद हो सकते हैं?

उत्तर : नरक में निर्जरा के सात भेद हो सकते हैं—

१. कायक्लेश २. प्रतिसंलीनता ३. प्रायश्चित्त ४. विनय
५. स्वाध्याय ६. ध्यान ७. व्युत्सर्ग

कायक्लेश के अतिरिक्त छहों भेद अधिकतर सम्यक्त्वी नारक में होते हैं। वे नमस्कार महामंत्र आदि का यथासमय स्वाध्याय भी करते हैं। अनित्य चिंतन ध्यान भी करते हैं। विनय वे ज्ञान, दर्शन आदि के चिंतन रूप में करते हैं।

प्रश्न २६. वेदना से व्यथित होकर नारक जीव क्या करते हैं?

उत्तर : भयंकर वेदना से व्यथित नारक जीव बचाव के लिये इधर-उधर दौड़ते हैं, उछलते भी हैं। उनकी छलांग उत्कृष्ट पांच सौ योजन तक हो सकती है। यह छलांग उनकी स्वयं की शक्ति से नहीं भरी जाती, अपितु परमाधार्मिक देवों के द्वारा प्रक्षिप्त वैक्रिय पुद्गलों के माध्यम से भरी जाती है।

प्रश्न २७. क्या नारक जीव विकुर्वणा[1] करते हैं? यदि करते हैं तो कितने समय की?

उत्तर : नारकीय जीव विकुर्वणा तो करते हैं, किन्तु वह अशुभतम होती है। वह केवल अन्तर्मुहूर्त्त तक टिकती है, फिर विकुर्वित पुद्गल बिखर जाते हैं।

१. वैक्रिय शक्ति का उपयोग।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २८. क्या नारक जीवों के सात वेदनीय कर्म का विपाकोदय हो सकता है?

उत्तर : ग्रंथों में आचार्यों ने कुछ कारणों-निमित्तों से अन्तर्मुहूर्त्त के लिए नारक जीवों के सात वेदनीय का विपाकोदय (प्रकट में फल देना) माना है, वे हैं—

- ❖ उत्पन्न होते समय पिछले जन्म का क्लेश छूट जाता है, नये जन्म का क्लेश अभी शुरू नहीं हुआ है तब तक।
- ❖ मित्र देवता के सहयोग करने पर।
- ❖ सम्यक्त्व प्राप्ति के समय।
- ❖ तीर्थंकरों के पंच कल्याणक के समय।

प्रश्न २९. क्या नारक जीवों में पति-पत्नी आदि संबंध भी होते हैं?

उत्तर : नारक जीव सभी नपुंसक होते हैं, अतः पति-पत्नी का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यह केवल त्रास भूमि है, वहां उन्हें वेदना से भी छुटकारा नहीं मिलता। वहां जीवों के केवल कष्ट भोगने की नियति है।

प्रश्न ३०. क्या नारक जीवों में सम्यक्त्व होती है?

उत्तर : नारक जीव सम्यक्त्वी हो सकते हैं। राजा श्रेणिक आदि तो क्षायिक सम्यक्त्वी हैं। नरक में प्रथम चार गुणस्थान हैं।

प्रश्न ३१. कोई नारक जीव देव आदि के सहयोग से क्या नरकायु अन्यत्र भोग सकता है?

उत्तर : नहीं, नारक जीवों को अपना जीवन नरक में ही भोगना पड़ता है। कोई देवता उन्हें नरक से नहीं निकाल सकता। महासती सीता का जीव जो ग्यारहवें-बारहवें स्वर्ग के इन्द्र हैं, उन्होंने लक्ष्मण, रावण आदि को नरक से निकालना चाहा, किन्तु असफल रहे। उनका आयुष्य निरुपक्रमी[1] होता है।

प्रश्न ३२. नरक से निकलकर जीव कहां-कहां जाता है?

उत्तर : नारक जीव पुनः नारक और देवता नहीं बनता। छह नरक तक के जीव मनुष्य और तिर्यंच में उत्पन्न हो सकते हैं। सातवीं नरक से निकला हुआ जीव केवल तिर्यंच में ही उत्पन्न होता है।

प्रश्न ३३. नारक जीवों में क्षयोपशम के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : नारक जीवों में देवों की भांति क्षयोपशम के चौबीस प्रकार हैं।

---

१. इसकी परिभाषा देखें 'कर्मबोध' अध्याय के 'अवस्था व समवाय' विभाग (प्रश्न २०) में।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ३४. चरम शरीरी कौन सी नरक से निकल कर बन सकते हैं?

उत्तर : प्रथम चार नरक से निकल कर चरम शरीरी बन सकते हैं।

प्रश्न ३५. तीर्थंकर कौन सी नरक से निकल कर बन सकते हैं?

उत्तर : प्रथम तीन नरक से निकल कर तीर्थंकर बन सकते हैं।

प्रश्न ३६. चक्रवर्ती कौन सी नरक से निकल कर बन सकते हैं?

उत्तर : मात्र प्रथम नरक से निकल कर चक्रवर्ती बन सकते हैं।

प्रश्न ३७. बलदेव, वासुदेव कौन सी नरक से निकल कर बन सकते हैं?

उत्तर : प्रथम दो नरक से निकल कर बलदेव, वासुदेव बन सकते हैं।

प्रश्न ३८. नरक से निकलने वाले भावी तीर्थंकर क्या अंतिम क्षण तक नरकगत तथा परमाधार्मिक देव कृत वेदना भोगते हैं?

उत्तर : भावी तीर्थंकर के छह माह नरकायुष्य अवशिष्ट रहता है, तब अन्य नारक जीवों से उन्हें देवों द्वारा अलग कर दिया जाता है, तब से केवल क्षेत्रगत वेदना ही भोगनी पड़ती है, परमाधार्मिक देव कृत नहीं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मार्ग बोध

१. ज्ञान मार्ग २. दर्शन मार्ग

३. चारित्र मार्ग

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१. ज्ञान मार्ग

प्रश्न १. उपयोग किसे कहते हैं?

उत्तर : चेतना की प्रवृत्ति को उपयोग कहते हैं।

प्रश्न २. उपयोग के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : उपयोग के दो प्रकार हैं–

१. साकार (विशेष), २. अनाकार (सामान्य)

प्रश्न ३. साकार व अनाकार उपयोग के कितने भेद हैं?

उत्तर : साकार उपयोग के आठ प्रकार हैं—

पांच ज्ञान

१. मति ज्ञान २. श्रुत ज्ञान ३. अवधि ज्ञान
४. मनःपर्यव ज्ञान ५. केवल ज्ञान

तीन अज्ञान

१. मति अज्ञान २. श्रुत अज्ञान ३. विभंग अज्ञान

अनाकार उपयोग के चार प्रकार हैं—

चार दर्शन

१. चक्षु दर्शन २. अचक्षु दर्शन ३. अवधि दर्शन
४. केवल दर्शन

प्रश्न ४. मति ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर : पांच इंद्रियों व मन के निमित्त से जो ज्ञान होता है, उसे मति ज्ञान कहते हैं। इसे आभिनिबोधिक ज्ञान भी कहते हैं।

प्रश्न ५. मति ज्ञान के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : मति ज्ञान के दो प्रकार हैं—

१. श्रुतनिश्रित २. अश्रुतनिश्रित

श्रुतनिश्रित मति ज्ञान के चार प्रकार हैं—

१. अवग्रह २. ईहा
३. अवाय ४. धारणा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अश्रुतनिश्रित मति ज्ञान के भी चार प्रकार हैं—

१. औत्पत्तिकी बुद्धि २. वैनयिकी बुद्धि
३. कार्मिकी बुद्धि ४. पारिणामिकी बुद्धि

प्रश्न ६. श्रुतनिश्रित मति का क्या स्वरूप है?

उत्तर : शास्त्राभ्यास से परिष्कृत तथा इंद्रिय गृहीत ज्ञान का पर्यालोचन श्रुतनिश्रित मति है, उसके चार प्रकार हैं—

अवग्रह — इंद्रिय और अर्थ का योग होने पर जो अस्तित्व का बोध होता है, उसे अवग्रह कहते हैं। जैसे—यह कुछ है। उसके दो प्रकार हैं—
१. व्यंजनावग्रह (अव्यक्त) २. अर्थावग्रह (व्यक्त)

ईहा — 'अमुक होना चाहिए' इस स्थिति तक पहुंचने का नाम ईहा है। जैसे—यह सर्प होना चाहिए।

अवाय — 'अमुक ही है' ऐसे निर्णयात्मक ज्ञान को अवाय कहते हैं। जैसे—यह सर्प ही है।

धारणा — निर्णयात्मक ज्ञान की अवस्थिति धारणा है। यह धारणा ही आगे चलकर स्मृति के रूप में परिणत हो जाती है।

प्रश्न ७. अश्रुतनिश्रित मति का क्या स्वरूप है?

उत्तर : शास्त्राभ्यास के बिना क्षयोपशमजन्य मति का पर्यालोचन अश्रुतनिश्रित मति है। उसके चार प्रकार हैं—

औत्पत्तिकी बुद्धि — जिसे कभी देखा नहीं, जिसके बारे में कभी सुना नहीं, उसके विषय में जो तत्काल ज्ञान हो जाता है, उसे औत्पत्तिकी बुद्धि कहते हैं। इसे राजस्थानी भाषा में 'उत्पातिया बुद्धि' भी कहते हैं।

वैनयिकी बुद्धि — विनय (शिक्षा) से उत्पन्न होने वाली बुद्धि वैनयिकी है।

कार्मिकी बुद्धि — कर्म (अभ्यास) से उत्पन्न होने वाली बुद्धि कार्मिकी है।

पारिणामिकी बुद्धि— अवस्था के परिपाक से उत्पन्न होने वाली बुद्धि पारिणामिकी है।

प्रश्न ८. जातिस्मरण ज्ञान क्या स्वतंत्र ज्ञान नहीं है?

उत्तर : जातिस्मरण ज्ञान स्वतंत्र नहीं है। यह मति ज्ञान का भेद है। पूर्व-जन्म की स्मृति के रूप में होने वाले ज्ञान को जातिस्मरण या जाति स्मृति ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न ९. जाति स्मृति कितने भवों की हो सकती है?

उत्तर : असंज्ञी का भव बीच में न हो तो नौ जन्मों तक की स्मृति हो सकती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न १०. श्रुत ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर : द्रव्य श्रुत (शब्द, संकेत आदि) के सहारे उत्पन्न या अभिव्यक्त होने वाले मति ज्ञान को ही श्रुत ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न ११. श्रुत ज्ञान के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : श्रुत ज्ञान के चौदह प्रकार हैं—

१. अक्षरश्रुत — वर्णाक्षरों के माध्यम से व्याख्या करना।
२. अनक्षरश्रुत — अंगुली आदि के संकेत से भावों को प्रकट करना।
३. संज्ञिश्रुत — गर्भज प्राणी का श्रुत।
४. असंज्ञिश्रुत — अमनस्क प्राणी का श्रुत।
५. सम्यक्श्रुत — सम्यक्त्वी जीव और मोक्ष का सहायक श्रुत।
६. मिथ्याश्रुत — मिथ्यात्वी जीव और मोक्ष का बाधक श्रुत।
७. सादिश्रुत — आदि (प्रारंभ) सहित श्रुत।
८. अनादिश्रुत — आदि रहित श्रुत।
९. सपर्यवसितश्रुत — अंत सहित श्रुत।
१०. अपर्यवसितश्रुत — अंत रहित (प्रवाह रूप में) श्रुत।
११. गमिकश्रुत — सदृश पाठ।
१२. अगमिकश्रुत — असदृश पाठ।
१३. अंगप्रविष्टश्रुत — अंगश्रुत (१२ अंग)।
१४. अनंगप्रविष्टश्रुत — अंगेतर श्रुत।

प्रश्न १२. मति ज्ञान व श्रुत ज्ञान में क्या अंतर है?

उत्तर : जहां मति है वहां श्रुत है और जहां श्रुत है वहां मति है। दोनों का अविनाभावी[1] संबंध है, फिर भी उनमें कुछ दृष्टियों से अन्तर है, जैसे—

- मति ज्ञान मनन प्रधान व श्रुत ज्ञान शब्द प्रधान है।
- मति से स्वगत बोध होता है, अतः मूक है। श्रुत ज्ञान से स्व व पर, दोनों का बोध होता है, इसलिए अमूकतुल्य-वचनात्मक है।
- मति केवल वार्तमानिक है, जबकि श्रुत त्रैकालिक है।
- मतिपूर्वक श्रुत होता है, पर मति श्रुतपूर्वक नहीं होता।
- मति छाल के समान है क्योंकि वह श्रुतज्ञान का कारण है। श्रुत रज्जु के समान है क्योंकि वह मति का कार्य है।

१. नित्य साहचर्य

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न १३. अवधि ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर : इन्द्रिय व मन की सहायता के बिना केवल आत्मा के सहारे जो रूपी द्रव्यों का साक्षात् करता है, उसे अवधि ज्ञान कहते हैं। यह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि की विविध मर्यादाओं से बंधा हुआ होता है। ज्ञेय पदार्थ को जानने के लिए एकाग्र होना अवधि है। उससे होने वाले ज्ञान को अवधि ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न १४. अवधि ज्ञान के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : अवधि ज्ञान के छह प्रकार हैं—

१. अनुगामी — जो सर्वत्र अवधिज्ञानी के साथ-साथ चलता है। इसमें क्षेत्रीय प्रतिबद्धता नहीं है।

२. अननुगामी — जो ज्ञान उत्पत्ति क्षेत्र में ही बना रहता है। उस क्षेत्र को छोड़ते ही वह लुप्त हो जाता है।

३. वर्धमान — जो उत्पत्तिकाल से द्रव्य, क्षेत्र आदि में क्रमशः बढ़ता रहता है।

४. हीयमान — जो उत्पत्तिकाल से द्रव्य क्षेत्र आदि में क्रमशः हीन होता है।

५. प्रतिपाति — जिसका पतन हो जाता है।

६. अप्रतिपाती — जिसका पतन नहीं होता।

प्रश्न १५. क्या अवधि ज्ञान भवहेतुक है?

उत्तर : अवधि ज्ञान भवहेतुक भी है और क्षयोपशम हेतुक भी। देव और नारक के अवधि ज्ञान भवहेतुक तथा मनुष्य व तिर्यंच के क्षयोपशम हेतुक होता है।

प्रश्न १६. क्या मनुष्यों का अवधि ज्ञान अप्रतिपातिक होता है?

उत्तर : मनुष्य व तिर्यंच के अवधिज्ञान प्रतिपातिक व अप्रतिपातिक, दोनों होता है। देव और नारक के अवधि ज्ञान अप्रतिपातिक होता है।

प्रश्न १७. अवधि ज्ञान का क्षेत्र कितना है?

उत्तर : अवधि ज्ञान का क्षेत्र इस प्रकार है—

सात नरक के जीव जघन्य अर्द्ध कोस उत्कृष्ट ४ कोस तक देखते हैं।

भवनपति देव (असुरकुमार) जघन्य २५ योजन, उत्कृष्ट ऊंचा लोक में पहले, दूसरे देवलोक, नीचे तीसरी नरक के नीचे तक व तिर्यक् लोक में असंख्य द्वीप, समुद्र तक उनका ज्ञान पहुंचता है।

भवनपति देव (नौ निकाय) व व्यंतर देव जघन्य २५ योजन, उत्कृष्ट ऊंचा लोक में पहला देवलोक, नीचे पाताल कलश व तिर्यक् लोक में असंख्यात द्वीप, समुद्र तक देखते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ज्योतिष्क देव जघन्य-उत्कृष्ट संख्यात योजन को देखते हैं।

वैमानिक देव जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, ऊंचा लोक मे अपने-अपने विमानों की ध्वजा तक, तिर्यक् लोक में असंख्य द्वीप, समुद्र तक देखते हैं। नीचे लोक में पहले-दूसरे देवलोक के देव पहली नरक के तल तक, तीसरे-चौथे के दूसरी नरक, पांचवें-छठे के तीसरी नरक, सातवें-आठवें के चौथी नरक, नौवें से बारहवें तक के पांचवीं नरक, नौ ग्रैवेयक के छठी नरक व पांच अनुत्तर विमान के देव सातवीं नरक के तल तक देखते हैं।

तिर्यंच जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट संख्यात द्वीप, समुद्र को देख सकते हैं। मनुष्य जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट सम्पूर्ण लोक व अलोक में लोक जैसे असंख्य आकाश खंडों को देख सकते हैं।

प्रश्न १८. मनःपर्यव ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर : मनोद्रव्य के पर्यायों का साक्षात् करने वाला ज्ञान मनःपर्यव ज्ञान कहलाता है।

प्रश्न १९. मनःपर्यव ज्ञान के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : मनःपर्यव ज्ञान के दो प्रकार हैं—

१. ऋजुमति — मानसिक पुद्गलों को सामान्यरूपेण ग्रहण करने वाली मति को ऋजुमति कहा जाता है।

२. विपुलमति — उसके विशेष पर्यायों को ग्रहण करने वाली मति को विपुलमति कहा जाता है।

प्रश्न २०. अवधि व मनःपर्यव ज्ञान में क्या अंतर है?

उत्तर : चार भेद से अवधि व मनःपर्यव की भिन्नता की प्रतीति होती है—

१. विशुद्धिकृत — अवधिज्ञानी जिन मनोद्रव्य के पर्यायों को जानता है, उन्हीं को मनःपर्यवज्ञानी विशुद्धतर जानता है।

२. क्षेत्रकृत — अवधिज्ञानी अंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर समग्र लोक को जानता है जबकि मनः पर्यव ज्ञान मनुष्य क्षेत्र तक ही सीमित है।

३. स्वामीकृत — अवधि ज्ञान संयति, असंयति और संयतासंयति सभी के होता है, किंतु मनःपर्यव ज्ञान केवल संयति के होता है।

४. विषयकृत — अवधि ज्ञान का विषय रूपी द्रव्य और उनके अपूर्ण पर्याय (संपूर्ण पर्याय नहीं) हैं। मनःपर्यव का विषय है—मनोवर्गणा का अनंतवां भाग।

प्रश्न २१. केवल ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर : समस्त द्रव्यों व पर्यायों का साक्षात् करने वाला ज्ञान केवल ज्ञान है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २२. पांच ज्ञान में प्रत्यक्ष व परोक्ष कितने हैं?

उत्तर : पांच ज्ञान में अंतिम तीन प्रत्यक्ष व प्रथम दो परोक्ष हैं। प्रत्यक्ष अतींद्रिय व परोक्ष इंद्रिय ज्ञान होता है।

प्रश्न २३. पांच ज्ञान में भाषक व अभाषक कितने-कितने हैं?

उत्तर : श्रुतज्ञान भाषक व शेष चार ज्ञान अभाषक हैं।

प्रश्न २४. क्या ज्ञान की उपलब्धि क्षयोपशम से होती है?

उत्तर : प्रथम चार ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम व केवल ज्ञान उसके क्षय से उपलब्ध होता है।

प्रश्न २५. ज्ञान और अज्ञान में क्या अंतर है?

उत्तर : ज्ञान और अज्ञान दोनों क्षयोपशमजन्य है। मति ज्ञान-मति अज्ञान, श्रुत ज्ञान-श्रुत अज्ञान व अवधि ज्ञान-विभंग अज्ञान में कोई अंतर नहीं है। सम्यक् दृष्टि का ज्ञान—ज्ञान व मिथ्या दृष्टि का ज्ञान—अज्ञान है। मिथ्यात्व-सहवर्ती होने के कारण ही वह अज्ञान कहलाता है। जो अज्ञान औदयिक है, उसका यहां उल्लेख नहीं है।

प्रश्न २६. ज्ञान पांच हैं अज्ञान तीन, ऐसा क्यों?

उत्तर : मनःपर्यव ज्ञान व केवल ज्ञान सिर्फ सम्यग् दृष्टि संयति के ही होता है, इसलिए अज्ञान तीन ही हैं।

प्रश्न २७. दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर : ज्ञेय पदार्थ का विशद रूप में बोध न होकर मात्र अस्तित्व का बोध होता है, जिसका कोई आकार नहीं बन पाता, उसे दर्शन कहते हैं। इसे निराकार उपयोग या निर्विकल्प उपयोग भी कहते हैं। इसके चार भेद हैं—चक्षु, अचक्षु, अवधि व केवल दर्शन।

प्रश्न २८. चारों दर्शन का स्वरूप क्या है?

उत्तर : चक्षु के सामान्य बोध को चक्षु दर्शन व शेष इन्द्रिय तथा मन के सामान्य बोध को अचक्षु दर्शन कहते हैं।

अवधि और केवल के सामान्य बोध को क्रमशः अवधि दर्शन और केवल दर्शन कहते हैं।

प्रश्न २९. कौन से ज्ञान का किस दर्शन से संबंध है?

उत्तर :

मति ज्ञान	चक्षु-अचक्षु दर्शन
श्रुत ज्ञान	दर्शन नहीं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अवधि ज्ञान	अवधि दर्शन
मनःपर्यव ज्ञान	दर्शन नहीं
केवल ज्ञान	केवल दर्शन

प्रश्न ३०. श्रुत ज्ञान व मनःपर्यव ज्ञान के दर्शन क्यों नहीं?

उत्तर : श्रुत ज्ञान वाक्यार्थ विशेष का ग्रहण करता है। मनःपर्यव ज्ञान से मन की अवस्थाओं का बोध होता है। वाक्य व मन की अवस्थाएं विशेष होती हैं, जबकि दर्शन सामान्य बोध होता है, इसलिए इन दोनों के साथ दर्शन को नहीं लिया गया।

२. दर्शन (सम्यक्त्व) मार्ग

प्रश्न १. सम्यक्त्व का क्या महत्त्व है?

उत्तर : मोक्ष प्राप्ति का प्रथम सोपान है सम्यक्त्व। जो जीव सम्यक्त्वी नहीं है, उसके ज्ञान नहीं होता। ज्ञान के बिना चारित्र का अभाव रहता है। चारित्र के अभाव में कर्ममुक्ति नहीं होती। सकर्मा आत्मा का निर्वाण नहीं होता।

प्रश्न २. सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर : यथार्थ तत्त्व श्रद्धा को सम्यक्त्व कहते हैं। यही सम्यग् दर्शन है। वैसे सामान्य बोध भी दर्शन है, पर यहां इसे सम्यक्त्व के रूप में निदर्शित किया गया है।

प्रश्न ३. सम्यक्त्व की प्राप्ति कैसे होती है?

उत्तर : अनन्तानुबंधी चतुष्क—क्रोध, मान, माया व लोभ तथा दर्शन मोहनीय के तीन—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व व मिश्र—इन सात प्रकृतियों के क्षय, क्षयोपशम या उपशम से सम्यक्त्व प्राप्त होती है।

प्रश्न ४. सम्यक्त्व के हेतु कितने हैं?

उत्तर : सम्यक्त्व के दो हेतु हैं—

१. निसर्ग — बिना किसी प्रयत्न के सहज कर्म विलय से जो सम्यक्त्व उपलब्ध होती है, उसे निसर्ग सम्यक्त्व कहते हैं।

२. अधिगम — उपदेश या किसी बाह्य निमित्त से उपलब्ध सम्यक्त्व अधिगम कहलाती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ५. सम्यक्त्व के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : सम्यक्त्व के पांच प्रकार हैं—

१. औपशमिक २. क्षायिक ३. क्षायोपशमिक
४. सास्वादन ५. वेदक

प्रश्न ६. इन पांचों का स्वरूप क्या है?

उत्तर : उपरोक्त मोहनीय कर्म की सात प्रकृतियों के उपशमन से औपशमिक, सर्वथा क्षय से क्षायिक एवं क्षयोपशम से प्राप्त सम्यक्त्व क्षायोपशमिक कहलाती है।

औपशमिक सम्यक्त्व से गिरने वाला जीव मिथ्यात्व की ओर अग्रसर हो रहा है, उस समय की सम्यक्त्व को सास्वादन सम्यक्त्व कहते हैं।

क्षायक सम्यक्त्व की प्राप्ति जब क्षायोपशमिक सम्यक्त्व से होती है, उसके अंतिम समय में सातों प्रकृतियां प्रदेशोदय के रूप में अनुभूत होती हैं, उसे वेदक सम्यक्त्व कहते हैं। वैसे यह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का अंतिम समय है।

प्रश्न ७. सम्यक्त्व की स्थिति कितनी है?

उत्तर :

औपशमिक सम्यक्त्व	जघन्य-उत्कृष्ट-अंतर्मुहूर्त्त
क्षायिक सम्यक्त्व	सादि-अनन्त
क्षायोपशमिक सम्यक्त्व	जघन्य-एक समय, उत्कृष्ट-साधिक ६६ सागर
सास्वादन सम्यक्त्व	जघन्य-एक समय, उत्कृष्ट-छह आवलिका
वेदक सम्यक्त्व	जघन्य-उत्कृष्ट-एक समय

प्रश्न ८. एक भव (जीवन) में सम्यक्त्व कितनी बार आ सकती है?

उत्तर : औपशमिक व सास्वादन एक भव में जघन्य एक बार व उत्कृष्ट पांच बार आ सकती है। वेदक जघन्य-उत्कृष्ट एक बार, क्षयोपशम जघन्य एक बार, उत्कृष्ट प्रत्येक हजार बार (दो हजार से नौ हजार तक) आ सकती है। क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद जाती नहीं है।

प्रश्न ९. क्या सम्यक्त्व चारों गतियों में प्राप्त हो सकती है?

उत्तर : चारों ही गतियों में जीव औपशमिक, क्षायोपशमिक व सास्वादन सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकता है। क्षायिक व वेदक सम्यक्त्व मात्र मनुष्य गति में ही प्राप्त होती है।

प्रश्न १०. क्या सम्यक्त्वी चारों गतियों में होते हैं?

उत्तर : चार ही गतियों में चार सम्यक्त्व वाले जीव होते हैं, वेदक को छोड़कर। वेदक सम्यक्त्व प्राप्त जीव केवल मनुष्य गति में ही होते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ११. क्या सम्यक्त्व का उच्छेद (समाप्ति) हो सकता है?

उत्तर : क्षायिक सम्यकत्व का उच्छेद कभी नहीं होता। शेष चार सम्यक्त्व का उच्छेद हो सकता है।

प्रश्न १२. पांचों सम्यक्त्व की अल्पाबहुत्व का क्या क्रम है?

उत्तर : सबसे कम उपशम सम्यक्त्वी है। उससे संख्यात गुण अधिक वेदक सम्यक्त्वी, उससे असंख्य गुण अधिक सास्वादन सम्यक्त्वी, उससे असंख्य गुण अधिक क्षयोपशम सम्यक्त्वी हैं, उससे अनन्त गुण अधिक क्षायक सम्यक्त्वी हैं सिद्धों की अपेक्षा से।

प्रश्न १३. सम्यक्त्व कौन-कौन से गुणस्थान में हैं?

उत्तर :

औपशमिक	—	चौथा से ग्यारहवां गुणस्थान
क्षायिक	—	चौथा से चौदहवां गुणस्थान तथा सिद्ध
क्षायोपशमिक	—	चौथा से सातवां गुणस्थान
सास्वादन	—	दूसरा गुणस्थान
वेदक	—	चौथा से सातवां गुणस्थान

प्रश्न १४. सम्यक्त्वी में चारित्र कितने होते हैं?

उत्तर :

औपशमिक सम्यक्त्वी में	—	४, सामायिक, छेदोपस्थापनीय, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात
क्षायिक सम्यक्त्वी में	—	५, सभी
क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी में	—	३, सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि
सास्वादन सम्यक्त्वी में	—	चारित्र नहीं
वेदक सम्यक्त्वी में	—	३, क्षायोपशमिक वत्

प्रश्न १५. सम्यक्त्वी में शरीर कितने हैं?

उत्तर :

औपशमिक सम्यक्त्वी में	—	४, औदारिक, वैक्रिय, तैजस्, कार्मण
क्षायिक सम्यक्त्वी में	—	५, सभी
क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी में	—	५, सभी
सास्वादन सम्यक्त्वी में	—	४, आहारक छोड़कर
वेदक सम्यक्त्वी में	—	३, औदारिक, तैजस्, कार्मण

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न १६. सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् जीव संसार में कब तक परिभ्रमण कर सकता है?

उत्तर : सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् जीव उसी भव में मुक्त हो सकता है। अधिकतम कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन[1] तक परिभ्रमण कर सकता है। क्षायिक सम्यक्त्वी अधिकतम तीन भव के बाद अवश्य मोक्षगामी होता है।

प्रश्न १७. क्या सम्यक्त्वी परित संसारी होता है?

उत्तर : सम्यक्त्वी परित[2] और अपरित[3] दोनों होते हैं।

प्रश्न १८. सम्यक्त्वी मर कर कहां जाता है?

उत्तर : सम्यक्त्वी दो प्रकार के होते हैं—(१) औदारिक शरीरी (२) वैक्रिय शरीरी। औदारिक शरीरी अर्थात् मनुष्य और तिर्यंच। सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद जब ये आयुष्य का बंध करते हैं, तो वे निश्चित ही देवगति में, उसमें भी केवल वैमानिक देवलोक में जाते हैं। वैक्रिय शरीरी—नारक और देव। सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद केवल मनुष्य गति का ही आयुष्य बंध करते हैं।

सम्यक्त्व प्राप्ति से पूर्व यदि आयुष्य का बंध हो जाए तो औदारिक शरीरी चारों गतियों में जा सकते हैं। वैक्रिय शरीरी केवल मनुष्य और तिर्यंच गति में जाते हैं।

प्रश्न १९. क्या सम्यक्त्वी के अकाम निर्जरा होती है?

उत्तर : सम्यक्त्वी के सकाम निर्जरा होती है। कभी परवशता या स्थिति विशेष में अकाम निर्जरा हो सकती है।

प्रश्न २०. औपशमिक सम्यक्त्वी क्या क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो सकता है?

उत्तर : औपशमिक सम्यक्त्वी क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ नहीं हो सकता, उपशम श्रेणी पर आरूढ़ हो सकता है।

प्रश्न २१. क्या क्षायक सम्यक्त्वी उपशम श्रेणी पर चढ़ सकता है?

उत्तर : क्षायक सम्यक्त्वी क्षपक व उपशम, दोनों श्रेणियों पर चढ़ सकता है।

---

१. अनन्त कालचक्र वाला एक कालमान।

२. परित-सीमित। यह दो प्रकार का है—
   १. कायपरित—एक शरीर में एक जीव।
   २. भव परित—सीमित जन्म-मरण के बाद मोक्ष जाने वाला।

३. अपरित-असीमित। यह भी दो प्रकार का है—
   १. काय अपरित—अनंतकाय।
   २. भव अपरित—भवों की अनिर्णीत संख्या वाला।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २२. क्या क्षयोपशम सम्यक्त्वी श्रेणी ले सकता है?

उत्तर : क्षयोपशम सम्यक्त्वी दोनों ही श्रेणी नहीं ले सकता।

प्रश्न २३. जीव एक भव में कितनी बार श्रेणी आरोहण कर सकता है?

उत्तर : जीव एक भव में उपशम श्रेणी दो बार ले सकता है, पर क्षपक श्रेणी एक बार ही आती है। एक बार उपशम श्रेणी लेने के बाद उस भव में क्षपक श्रेणी पर आरोहण नहीं होता—यह प्रवचनसारोद्धार का अभिमत है। कर्म ग्रंथ के अनुसार एक बार उपशम श्रेणी लेने के बाद उस भव में क्षपक श्रेणी पर आरोहण कर सकता है।

प्रश्न २४. सम्यक्त्व के कितने लक्षण हैं?

उत्तर : सम्यक्त्वी कौन है, कौन नहीं है, इसका निर्धारण निश्चय में अतीन्द्रिय ज्ञानी ही कर सकते हैं। व्यवहार की अपेक्षा से उसके पांच लक्षण हैं—

१. शम — कषाय की शान्ति
२. संवेग — मोक्षाभिलाषा
३. निर्वेद — वैराग्य
४. अनुकंपा — करुणा
५. आस्तिक्य — आत्मा, कर्म आदि में आस्था

प्रश्न २५. सम्यक्त्व के कितने दूषण (अतिचार) हैं?

उत्तर : सम्यक्त्व को दूषित/मलिन करने वाले पांच दूषण हैं—

१. शंका — तत्त्व के प्रति संदेह
२. कांक्षा — कुमत के प्रति अनुरक्ति
३. विचिकित्सा — फलप्राप्ति में संशय
४. परपाषण्डप्रशंसा — कुतत्त्वगामी व्यक्तियों की प्रशंसा करना
५. परपाषण्डपरिचय — कुतत्त्वगामी व्यक्तियों से संपर्क रखना

प्रश्न २६. सम्यक्त्व के कितने भूषण हैं?

उत्तर : सम्यक्त्व के पांच भूषण हैं—

१. स्थैर्य — धर्म में स्थिर होना
२. प्रभावना — धर्म की महिमा फैलाना
३. भक्ति — देव, गुरु और धर्म का बहुमान करना
४. कौशल — धर्म की अवगति करना
५. तीर्थ सेवा — चार तीर्थ की यथोचित सेवा करना

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २७. सम्यक्त्व के आचार कितने हैं?

उत्तर : सम्यक्त्व के आठ आचार हैं—

१. निश्शंकित — वीतराग वचनों पर दृढ़ आस्था रखना
२. निष्कांक्षित — कुमत की वांछा न करना
३. निर्विचिकित्सित — धर्म के फल में संशय न करना
४. अमूढ़दृष्टि — पर दर्शन की समृद्धि देखकर न फंसना
५. उपवृंहण — साधर्मिक का गुणोत्कीर्तन करना
६. स्थिरीकरण — धर्म के पथ से विचलित व्यक्तियों को पुनः धर्म में स्थिर करना
७. वात्सल्य — गुरु, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान आदि की विशेष सेवा करना
८. प्रभावना — वीतराग शासन की महिमा बढ़ाना

प्रश्न २८. सम्यक्त्व को स्थिर कैसे रखा जा सकता है?

उत्तर : सम्यक्त्व को स्थिर रखने के लिए छह उपाय बताए गए हैं—

१. आत्मा है।
२. आत्मा नित्य है।
३. आत्मा कर्म का कर्ता है।
४. आत्मा कर्म का भोक्ता है।
५. आत्मा कर्म-मुक्त होता है।
६. आत्मा के मुक्त होने के साधन हैं।

३. चारित्र मार्ग

प्रश्न १. चारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर : आत्मा की अशुद्ध प्रवृत्तियों के निरोध को चारित्र कहते हैं।

प्रश्न २. चारित्र का क्या महत्त्व है?

उत्तर : चारित्र प्राप्ति के बिना कोई भी जीव शैलेशी[1] अवस्था को प्राप्त नहीं होता, पूर्ण

१. शैलेशी—शैल+ईश=शैलेश, पर्वत+स्वामी=मेरु पर्वत। जैसे प्रलय काल की हवाओं के बीच मेरु पर्वत कंपायमान नहीं होता वैसे ही चौदहवें गुणस्थान में आत्मा अप्रकंप अवस्था को प्राप्त करती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

संवरयुक्त नहीं होता। शैलेशी अवस्थाप्राप्त व पूर्ण संवरयुक्त जीव ही कर्ममुक्त हो सकता है।

प्रश्न ३. चारित्र की प्राप्ति कैसे होती है?

उत्तर : चारित्र मोहनीय की बारह—अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानी व प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियों के क्षयोपशम से चारित्र की प्राप्ति होती है। इनमें किसी-किसी के अनन्तानुबंधी कषाय चतुष्क तथा दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियों का क्षय भी हो सकता है।

प्रश्न ४. चारित्र के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : चारित्र के पांच प्रकार हैं—

१. सामायिक २. छेदोपस्थापनीय ३. परिहार विशुद्धि
४. सूक्ष्म संपराय ५. यथाख्यात

प्रश्न ५. चारित्र के पांच प्रकारों को कैसे परिभाषित करें?

उत्तर :

१. सामायिक — सर्व सावद्य योगों का प्रत्याख्यान करना सामायिक चारित्र है।

२. छेदोपस्थापनीय — विस्तार से विभागपूर्वक महाव्रतों की उपस्थापना करना व पूर्व पर्याय का छेद होने पर जो चारित्र मिलता है, उसे छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं।

३. परिहार विशुद्धि — आत्म विशुद्धि की सावधिक निर्धारित तपस्या पूर्वक साधना को परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं।

४. सूक्ष्म संपराय — दसवें गुणस्थान में होने वाले चारित्र को सूक्ष्म संपराय चारित्र कहते हैं। इस चारित्र में क्रोध, मान, माया का संपूर्ण उपशम या क्षय हो जाता है। केवल सूक्ष्म लोभ का अंश विद्यमान रहता है।

५. यथाख्यात — वीतराग के चारित्र को यथाख्यात कहते हैं।

प्रश्न ६. पांच चारित्र के कितने उपभेद हो सकते हैं?

उत्तर : सामायिक चारित्र के दो भेद हैं—

१. अल्पकालिक — यह प्रथम व अंतिम तीर्थंकरों के काल में होता है। इसकी स्थिति जघन्य ७ दिन, मध्यम ४ माह व उत्कृष्ट ६ माह होती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२. यावज्जीवन — यह मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों के काल में व महाविदेह क्षेत्र में होता है। इसकी स्थिति यावज्जीवन की होती है।

छेदोपस्थापनीय के दो भेद हैं—

१. अतिचार सहित — दोषयुक्त

२. अतिचार रहित — दोषमुक्त—तेईसवें तीर्थंकर के शासन के मुनि जब चौबीसवें तीर्थंकर के धर्मशासन में आते हैं उनको व नवदीक्षित को यह चारित्र आता है।

परिहार विशुद्धि चारित्र के दो भेद हैं—

१. नियट्टमाण — 'परिहार विशुद्धि' तप में संलग्न होना।

२. नियट्टकाय — तप की पूर्णता

सूक्ष्म संपराय चारित्र के दो भेद हैं—

१. संक्लेसमाण — श्रेणी पतन के समय

२. विशुद्धमाण — श्रेणी आरोहण के समय

यथाख्यात चारित्र के दो भेद हैं—

१. छद्मस्थ — ग्यारहवें व बारहवें गुणस्थान में

२. केवली — तेरहवें व चौदहवें गुणस्थान में

प्रश्न ७. चारित्र कौन से गुणस्थान में होते हैं?

उत्तर : सामायिक व छेदोपस्थापनीय छठे से नौवें, परिहार विशुद्धि छठे व सातवें, सूक्ष्म संपराय दसवें तथा यथाख्यात ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान में होता है।

प्रश्न ८. चारित्र छह द्रव्य में कौन व नौ तत्त्व में कौन है?

उत्तर : पांचों ही चारित्र छह में जीव, नौ में परिहार विशुद्धि तीन—जीव, संवर, निर्जरा, शेष चार चारित्र दो—जीव, संवर। परिहार विशुद्धि चारित्र तपस्यामूलक होने से उसमें निर्जरा भी मानी गई है।

प्रश्न ९. चारित्र कौन सा भाव व कौन सी आत्मा है?

उत्तर : चारित्र—भाव चार-औदयिक को छोड़कर

आत्मा एक—चारित्र

प्रश्न १०. क्या चारित्र की प्राप्ति तीर्थ स्थापना के बाद होती है?

उत्तर : तीर्थ स्थापना के बाद पांच ही चारित्र हो सकते हैं। तीर्थ स्थापना से पूर्व सामायिक, सूक्ष्म संपराय व यथाख्यात—इन तीन चारित्र की प्राप्ति हो सकती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ११. क्या चारित्र सवेदी है?

उत्तर : सामायिक व छेदोपस्थापनीय सवेदी व अवेदी दोनों हैं। दोनों में वेद तीन ही है। परिहार विशुद्धि सवेदी-वेद-२ पुरुष व कृतनपुंसक।

सूक्ष्म संपराय व यथाख्यात-अवेदी-उपशम व क्षीणवेदी।

प्रश्न १२. चारित्र सरागी है या वीतरागी?

उत्तर : प्रथम चार चारित्र सरागी व यथाख्यात वीतरागी है। वे उपशम व क्षीण वीतरागी होते हैं।

प्रश्न १३. किस कल्प में कितने चारित्र हैं?

उत्तर : कल्प का अर्थ है—आचार-विधि। उसके पांच प्रकार हैं—

१. स्थितिकल्प[1] २. अस्थितिकल्प[2] ३. जिनकल्प[3]
४. स्थविरकल्प[4] ५. कल्पातीत[5]

स्थितिकल्प मुनियों में पांच चारित्र होते हैं।

अस्थितिकल्प व कल्पातीत में तीन—सामायिक, सूक्ष्म संपराय व यथाख्यात होते हैं।

जिनकल्प व स्थविरकल्प में प्रथम तीन चारित्र पाते हैं।

प्रश्न १४. चारित्र में ज्ञान कितने होते हैं?

उत्तर : प्रथम चार चारित्र में दो, तीन, चार ज्ञान हो सकते हैं। यथाख्यात में दो, तीन, चार व एक हो सकता है। चारित्र में क्षयोपशमजन्य अज्ञान नहीं होता।

प्रश्न १५. चारित्र में श्रुत ज्ञान कितना हो सकता है?

उत्तर : परिहार विशुद्धि चारित्र वाले जघन्य नौवें पूर्व की तीन आचार वस्तु, उत्कृष्ट कुछ कम दस पूर्व का अध्ययन करते हैं। शेष चार चारित्र जघन्य-आठ प्रवचनमाता[6], उत्कृष्ट चौदह पूर्व। यथाख्यात चारित्र वाले (केवली) श्रुत व्यतिरिक्त ज्ञान वाले भी होते हैं।

---

१. नौ कल्पी विहार करने वाले।
२. नौ कल्पी विहार करने के नियम से मुक्त।
३. तीर्थंकर सदृश साधना।
४. शहरों व बस्तियों में मर्यादायुक्त साधना करने वाले।
५. आगम वर्णित ८ कल्प (मर्यादा) से मुक्त।
६. पांच समिति व तीन गुप्ति को प्रवचनमाता कहा है इन्हें जानने वाला।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न १६. चारित्र में शरीर कितने होते हैं?

उत्तर : प्रथम दो चारित्र में औदारिक, तैजस् व कार्मण—ये तीन, वैक्रिय सहित चार व आहारक सहित पांच शरीर होते हैं। अंतिम तीन में तीन—औदारिक, तैजस् व कार्मण शरीर पाते हैं।

प्रश्न १७. चारित्र में लेश्या कितनी होती हैं?

उत्तर : सामायिक, छेदोपस्थापनीय में छह, परिहार विशुद्धि में तीन शुभ तथा सूक्ष्म संपराय व यथाख्यात में एक शुक्ल लेश्या होती है। परिहार विशुद्धि में तीन शुभ लेश्या उसमें प्रवेश व संपन्नता के समय की अपेक्षा से ली गई है। मध्यवर्ती काल में छह ही लेश्या हो सकती है। यथाख्यात वाले अलेशी भी होते हैं।

प्रश्न १८. एक भव में चारित्र की सम्यग् आराधना करने वाले जीव आगे कितने भवों में चारित्र को प्राप्त कर सकते हैं?

उत्तर : सामायिक व छेदोपस्थापनीय चारित्र वाले जघन्य एक भव, उत्कृष्ट आठ भव में इस चारित्र को प्राप्त कर सकते हैं। शेष तीन चारित्र वाले जघन्य एक, उत्कृष्ट तीन भव में इस चारित्र को प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न १९. एक भव की दृष्टि से जीव कितनी बार चारित्र को प्राप्त कर सकता है?

उत्तर : एक भव की दृष्टि से सभी चारित्र जघन्य एक बार, उत्कृष्ट सामायिक ९००, छेदोपस्थापनीय १२०, परिहार विशुद्धि ३, सूक्ष्म संपराय ४ व यथाख्यात २ बार प्राप्त कर सकता है।

प्रश्न २०. अनेक भवों की दृष्टि से जीव कितनी बार चारित्र को प्राप्त कर सकता है?

उत्तर : मोक्षगमन से पूर्व सभी चारित्र वाले जीव जघन्य दो बार, उत्कृष्ट सामायिक ७२००, छेदोपस्थापनीय ९६०, परिहार विशुद्धि ७, सूक्ष्म संपराय ९ व यथाख्यात वाले ५ बार उसी चारित्र को प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न २१. चारित्र की स्थिति कितनी है?

उत्तर : एक भव में पांचों चारित्र की जघन्य स्थिति एक समय, उत्कृष्ट सामायिक, छेदोपस्थापनीय व यथाख्यात की कुछ कम करोड़ पूर्व, परिहार विशुद्धि की उनतीस वर्ष न्यून करोड़ पूर्व तथा सूक्ष्म संपराय की अन्तर्मुहूर्त्त है।

अनेक व्यक्तियों की अपेक्षा से सामायिक व यथाख्यात की सर्वकाल,

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

छेदोपस्थापनीय की जघन्य कुछ अधिक अढ़ाई सौ वर्ष उत्कृष्ट कुछ अधिक पचास लाख करोड़ सागर, परिहार विशुद्धि की जघन्य कुछ कम २०० वर्ष उत्कृष्ट कुछ कम दो करोड़ पूर्व, सूक्ष्म संपराय की जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त स्थिति है।

प्रश्न २२. चारित्र का उत्थान व पतन कहां होता है?

उत्तर : सामायिक चारित्र का उत्थान होने पर छेदोपस्थापनीय व सूक्ष्म संपराय चारित्र को प्राप्त होते हैं। छेदोपस्थापनीय वाले परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय; सूक्ष्म संपराय वाले यथाख्यात व यथाख्यात वाले उत्थान होने पर मोक्ष को प्राप्त होते हैं। परिहार विशुद्धि का उत्थान होता नहीं। पतन व (परिवर्तन) होने पर सामायिक वाले असंयति व श्रावकत्व को प्राप्त होते हैं। छेदोपस्थापनीय वाले सामायिक, संयतासंयति, असंयतित्व को; परिहार विशुद्धि वाले छेदोपस्थापनीय व असंयतित्व को; सूक्ष्म संपराय वाले सामायिक, छेदोपस्थापनीय व असंयतित्व को; यथाख्यात वाले सूक्ष्म संपराय व असंयतित्व को प्राप्त करते हैं।

प्रश्न २३. चारित्र की अल्पाबहुत्व का क्या क्रम है?

उत्तर : सबसे कम सूक्ष्म संपराय, उससे संख्यात गुण अधिक परिहार विशुद्धि, उससे संख्यात गुण अधिक यथाख्यात, उससे संख्यात गुण अधिक छेदोपस्थापनीय, उससे संख्यात गुण अधिक सामायिक चारित्र वाले हैं।

प्रश्न २४. चारित्र कौन से क्षेत्र में होता है?

उत्तर : सामायिक, सूक्ष्म संपराय व यथाख्यात पंद्रह कर्मभूमि में तथा अवशिष्ट दो चारित्र पांच भरत, पांच एरावत कुल दस क्षेत्रों में ही होता है। साहरण (अपहरण) की अपेक्षा परिहार विशुद्धि को छोड़कर शेष चार का अढ़ाई द्वीप क्षेत्र है। परिहार विशुद्धि चारित्र सम्पन्न मुनियों का साहरण नहीं होता। सूक्ष्म संपराय व यथाख्यात चारित्र वालों का वैसे साहरण तो नहीं होता, पर इन चारित्र की प्राप्ति से पूर्व उनका साहरण हो सकता है। वहीं उन्हें ये चारित्र प्राप्त हो जाते हैं। यथाख्यात संपन्न मुनि के जब केवली समुद्घात होता है, तब उनका क्षेत्र पूरा लोकव्यापी हो जाता है।

प्रश्न २५. संयमी मरकर किस गति में जाते हैं?

उत्तर : संयमी मरकर देवगति में उसमें भी मात्र वैमानिक देवलोक में ही जाते हैं या मोक्ष में जाते हैं। जो संयमी आराधक है, उनमें सामायिक व छेदोपस्थापनीय वाले जघन्य-प्रथम देवलोक, उत्कृष्ट-अनुत्तर विमान में जाते हैं। परिहार विशुद्धि-

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जघन्य प्रथम देवलोक, उत्कृष्ट-आठवां देवलोक, सूक्ष्म संपराय व यथाख्यात वाले जघन्य उत्कृष्ट-अनुत्तर विमान में जाते हैं। यथाख्यात चारित्र वाले मोक्ष भी जा सकते हैं। विराधक संयमी जघन्य-भवनपति, उत्कृष्ट-प्रथम देवलोक में जाते हैं।

प्रश्न २६. संयमी देवलोक में कौन सा पद पाते हैं?

उत्तर : देवलोक में पांच पद हैं—

१. इन्द्र[१] २. सामानिक[२] ३. त्रायस्त्रिंशक[३]
४. लोकपाल[४] ५. अहमिन्द्र[५]

आराधक सामायिक व छेदोपस्थापनीय वाले पांच ही पद पा सकते हैं। परिहार विशुद्धि अहमिन्द्र छोड़ चार तथा सूक्ष्म संपराय व यथाख्यात केवल अहमिन्द्र पद को प्राप्त करते हैं।

विराधक संयमी कोई भी पद प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रश्न २७. क्या सामायिक व छेदोपस्थापनीय चारित्र भरत व एरावत क्षेत्र के सभी तीर्थंकरों के शासनकाल में होते हैं?

उत्तर : भरत व एरावत क्षेत्रों में एक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होते हैं। सामायिक व छेदोपस्थापनीय दोनों चारित्र प्रथम व अंतिम तीर्थंकरों के शासनकाल में होते हैं। मध्यवर्ती तीर्थंकरों के शासनकाल में केवल सामायिक चारित्र होता है।

प्रश्न २८. परिहार विशुद्धि चारित्र का क्या स्वरूप है?

उत्तर : परिहार विशुद्धि चारित्र वाले 'परिहार' नाम की तपस्या करते हैं। इसे केवल छेदोपस्थापनीय चारित्र वाले ग्रहण कर सकते हैं। ऐसे मुनि जिनके संयमी जीवन के बीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, वे ही यह तप अंगीकार कर सकते हैं। नौ मुनि मिलकर अठारह महीनों तक कठोर तपस्या करते हैं। प्रथम छह महीनों में चार मुनि तप करते हैं, चार मुनि उनकी परिचर्या-सेवा करते हैं, उन नौ में से एक साधु को आचार्य नियुक्त कर लिया जाता है। दूसरी छमाही में तप करने वाले

---

१. राजा।
२. इन्द्र सदृश (सामंत)।
३. पुरोहित सदृश सम्मानित।
४. विशिष्ट अधिकारी।
५. स्वामी-सेवक व्यवस्था से मुक्त।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

परिचर्या व परिचर्या करने वाले तप करते हैं। आचार्य वही रहते हैं। तीसरी व अंतिम छमाही में आचार्य तप करते हैं, शेष आठों मुनियों में से एक को आचार्य चुन लिया जाता है और बाकी सात मुनि परिचर्या करते हैं।

तप का क्रम	ऋतु	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट
१. प्रथम छमाही में	ग्रीष्म	उपवास	बेला	तेला
२. द्वितीय छमाही में	शीत	बेला	तेला	चोला
३. तृतीय छमाही में	वर्षा	तेला	चोला	पंचोला

प्रश्न २९. क्या यह चारित्र संघबद्ध साधना में होता है?

उत्तर : इस चारित्र वालों की चर्या पृथक् होती है। उनका संघ से सीधा सम्बन्ध नहीं रहता। उनके गोचरी आदि का क्रम अलग ही रहता है।

प्रश्न ३०. क्या परिहार विशुद्धि चारित्र की परंपरा चलती है?

उत्तर : परिहार विशुद्धि चारित्र सबसे पहले तीर्थंकर से ग्रहण किया जाता है। उसके बाद उसी मुनि से ही यह चारित्र ग्रहण किया जा सकता है। इससे आगे उसकी साधना नहीं की जा सकती।

प्रश्न ३१. यथाख्यात चारित्र चरम शरीरी में होता है या अचरम शरीरी में?

उत्तर : दोनों में हो सकता है। अचरम शरीरी में उपशम यथाख्यात चारित्र हो सकता है जबकि चरम शरीरी में क्षायक यथाख्यात चारित्र होता है।

प्रश्न ३२. पांच चारित्र वालों में क्षयोपशम के कितने बोल पाते हैं?

उत्तर : सामायिक, छेदोपस्थापनीय एवं परिहार विशुद्धि वालों में २१ पाते हैं : ज्ञानावरणीय—५ (चार ज्ञान, भणन-गुणन), दर्शनावरणीय—८ (सभी), मोहनीय—२ (नामानुसार चारित्र, सम्यग् दृष्टि), अंतराय—६ (पांच लब्धि, पंडित वीर्य)। सूक्ष्म संपराय वालों में ११ : ज्ञानावरणीय—४ (चार ज्ञान), दर्शनावरणीय—कोई नहीं, मोहनीय—१ (चारित्र), अंतराय—६ (ऊपरवत्)। यथाख्यात वालों में १९ : ज्ञानावरणीय—५ (सामायिक वत्) दर्शनावरणीय—८ (सभी), मोहनीय—कोई नहीं, अंतराय—६ (ऊपरवत्)।

प्रश्न ३३. क्या चारित्र ग्रहण करने में वेश परिवर्तन की अनिवार्यता है?

उत्तर : वेश परिवर्तन की वैसे अनिवार्यता नहीं है किन्तु दीर्घकालीन चारित्र पर्याय में इसकी अनिवार्यता भी है। वेश परिवर्तन किये बिना प्रवचन, गोचरी आदि नहीं करते।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ३४. तिरेसठ शलाकापुरुषों में कौन कितने चारित्र ग्रहण कर सकते हैं?

उत्तर : २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव—ये ६३ शलाकापुरुष होते हैं। वासुदेव, प्रतिवासुदेव चारित्र ग्रहण नहीं कर सकते। तीर्थंकर, बलदेव नियमतः चारित्र ग्रहण करते हैं। चक्रवर्ती में कोई ग्रहण करते हैं, कोई नहीं करते।

प्रश्न ३५. निदान कृत व्यक्ति को चारित्र आ सकता है?

उत्तर : भवोपग्राही निदान करने वाले चारित्र ग्रहण नहीं कर सकते, अन्य निदान वाले उसे भोगने के बाद चारित्र ग्रहण कर सकते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कर्म बोध

१. प्रकृति व करण
२. अवस्था व समवाय
३. बंध व विविध

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१. प्रकृति व करण

प्रश्न १. कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर : शुभ-अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा आत्मा के चिपकने वाले तथा अच्छे-बुरे का परिणाम देने वाले पुद्गलों को कर्म कहते हैं।

प्रश्न २. कर्म की कितनी प्रकृतियां (प्रकार) हैं?

उत्तर : कर्म की आठ प्रकृतियां हैं—

१. ज्ञानावरणीय	२. दर्शनावरणीय	३. वेदनीय
४. मोहनीय	५. आयुष्य	६. नाम
७. गोत्र	८. अंतराय	

इसके और भी प्रकार हो सकते हैं। कर्म के ये आठ प्रकार स्थूल रूप से हैं। इनमें लगभग सभी प्रवृत्तियों से आकर्षित होने वाली कर्म वर्गणाओं का समाहार हो गया है।

प्रश्न ३. कर्म की उत्तर प्रकृतियां कितनी हैं?

उत्तर : कर्म की उत्तर प्रकृतियां निम्नोक्त हैं—

ज्ञानावरणीय[१] कर्म की पांच प्रकृतियां हैं—

१. मति ज्ञानावरण	२. श्रुत ज्ञानावरण	३. अवधि ज्ञानावरण
४. मनःपर्यव ज्ञानावरण	५. केवल ज्ञानावरण	

दर्शनावरणीय[२] कर्म की नौ प्रकृतियां हैं—

१. चक्षु दर्शनावरण	२. अचक्षु दर्शनावरण	३. अवधि दर्शनावरण
४. केवल दर्शनावरण	५. निद्रा[३]	६. निद्रा निद्रा[४]

---

१. ज्ञान को आवृत्त करने वाले कर्म पुद्गल।

२. दर्शन (सामान्य बोध) को आवृत्त करने वाले कर्म पुद्गल।

३. वह नींद जो सुखपूर्वक आती है और सुखपूर्वक भंग होती है।

४. जो कठिनाई से आती है और कठिनाई से भंग होती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

७. प्रचला[1] ८. प्रचला प्रचला[2] ९. स्त्यानर्द्धि[3]

वेदनीय[4] कर्म की दो प्रकृतियां हैं—

१. सात (सुख) वेदनीय २. असात (दुःख) वेदनीय

मोहनीय[5] कर्म की दो प्रकृतियां हैं—

१. दर्शन मोहनीय २. चारित्र मोहनीय

दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियां हैं—

१. सम्यक्त्व मोहनीय
२. मिथ्यात्व मोहनीय
३. मिश्र मोहनीय

चारित्र मोहनीय की पचीस प्रकृतियां हैं—

१-४ अनन्तानुबंधी कषाय चतुष्क — क्रोध, मान, माया, लोभ
५-८ अप्रत्याख्यानी कषाय चतुष्क — क्रोध, मान, माया, लोभ
९-१२ प्रत्याख्यानी कषाय चतुष्क — क्रोध, मान, माया, लोभ
१३-१६ संज्वलन कषाय चतुष्क — क्रोध, मान, माया, लोभ

नो कषाय[6]

१. हास्य	२. रति	३. अरति
४. भय	५. शोक	६. जुगुप्सा (घृणा)
७. स्त्री वेद	८. पुरुष वेद	९. नपुंसक वेद

आयुष्य[7] कर्म की चार प्रकृतियां हैं—

१. नरक आयुष्य २. तिर्यंच आयुष्य
३. मनुष्य आयुष्य ४. देव आयुष्य

---

१. बैठे या खड़े नींद लेना।
२. चलते-चलते जो नींद आये।
३. दिन में सोचा हुआ काम रात्रि में नींद में ही उठकर कर लेता है।
४. शरीरगत अनुभूति कराने वाले कर्म पुद्गल।
५. आत्मा को मूढ़ बनाने वाले कर्म पुद्गल।
६. कषाय की भांति आत्मा को उत्तप्त एवं विकृत बनाने वाली प्रकृतियां।
७. जीवन चलाने वाले कर्म पुद्गल।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

नाम कर्म[1] की दो प्रकृतियां हैं—

१. शुभ नाम २. अशुभ नाम

गोत्र कर्म[2] की दो प्रकृतियां हैं—

१. उच्च गोत्र २. नीच गोत्र

अंतराय कर्म[3] की पांच प्रकृतियां हैं—

१. दानान्तराय २. लाभान्तराय ३. भोगान्तराय
४. उपभोगान्तराय ५. वीर्यान्तराय

प्रश्न ४. ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीय कर्म बंध के क्या कारण हैं?

उत्तर : ज्ञानावरणीय कर्म बंध के छह कारण हैं—

१. ज्ञान और ज्ञानी से प्रतिकूलता रखना।
२. ज्ञान और ज्ञानी की निंदा, अवहेलना करना।
३. ज्ञान-प्राप्ति में अंतराय (बाधा) डालना।
४. ज्ञान व ज्ञानी से प्रद्वेष करना।
५. ज्ञान व ज्ञानी की आशातना करना।
६. ज्ञान व ज्ञानी के वचनों में विसंवाद अर्थात् विरोध दिखाना।

उपरोक्त इन छह कारणों में ज्ञान के स्थान पर दर्शन शब्द जोड़ने पर दर्शनावरणीय कर्म बंध के कारण बन जाते हैं।

प्रश्न ५. वेदनीय कर्म बंध के क्या कारण हैं?

उत्तर : सात वेदनीय कर्म बंध के छह कारण हैं—

१. प्राण, भूत, जीव, सत्त्व को अपनी असद् प्रवृत्ति से दुःख न देना।
२. दीन न बनाना।
३. शोक पैदा न करना।
४. न रुलाना।
५. लाठी आदि से प्रहार न करना।
६. परितापित न करना।

इनसे विपरीत प्रवृत्ति करने पर असात वेदनीय कर्म बंध के कारण बनते हैं।

---

१. इसका विस्तृत वर्णन देखें परिशिष्ट १ में।
२. ऐश्वर्य व अनैश्वर्य आदि देने वाले कर्म पुद्गल।
३. बाधा पहुंचाने वाले कर्म पुद्गल।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ६. मोहनीय कर्म बंध के क्या कारण हैं?

उत्तर : मोहनीय कर्म बंध के छह कारण हैं—

१-४ तीव्र क्रोध, मान, माया, लोभ

५ तीव्र दर्शन मोह—मिथ्यात्व

६ तीव्र चारित्र मोह—नौ नो कषाय रूप

प्रश्न ७. आयुष्य कर्म बंध के क्या कारण हैं?

उत्तर : नरकायु बंध के चार कारण हैं—

१. महाआरम्भ
२. महापरिग्रह
३. पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा
४. मांस-भक्षण

तिर्यंचायु बंध के चार कारण हैं—

१. माया
२. गूढ माया—एक माया को ढकने दूसरी माया करना
३. असत्य वचन
४. कूट तोल-कूट माप

मनुष्यायु बंध के चार कारण हैं—

१. सरल प्रकृति होना
२. विनीत प्रकृति होना
३. अनुकंपा के भाव होना
४. ईर्ष्या न करना

देवायु बंध के चार कारण हैं—

१. सराग संयम का पालन
२. श्रावकत्व का पालन
३. बाल (मिथ्यात्वी) तपस्या
४. अकाम निर्जरा

प्रश्न ८. नाम कर्म बंध के क्या कारण हैं?

उत्तर : शुभ नाम कर्म बंध के चार कारण हैं—

१. काय ऋजुता—दूसरों को काया से न ठगना
२. भाव ऋजुता—दूसरों को मन से न ठगना
३. भाषा ऋजुता—दूसरों को वचन से न ठगना
४. अविसंवादन योग—कथनी-करनी की समानता।

इनके विपरीत क्रम से अशुभ नाम कर्म बंध के हेतु बन जाते हैं।

प्रश्न ९. गोत्र कर्म बंध के क्या कारण हैं?

उत्तर : गोत्र कर्म बंध के आठ कारण हैं—

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१. जाति २. कुल ३. बल ४. रूप

५. तपस्या ६. श्रुत ७. लाभ ८. ऐश्वर्य

अहंकार करने से नीच गोत्र व न करने से उच्च गोत्र कर्म बंध के कारण बनते हैं।

प्रश्न १०. अंतराय कर्म बंध के क्या कारण हैं?

उत्तर : अंतराय कर्म बंध के पांच कारण हैं—

१. दान २. लाभ ३. भोग

४. उपभोग ५. वीर्य—इनमें बाधा पहुंचाना

प्रश्न ११. कर्म के आठ प्रकारों में शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप, घाति-अघाति कर्म कितने हैं?

उत्तर : ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय व अंतराय—ये एकान्त अशुभ व पाप हैं। ये घाति कर्म हैं।

वेदनीय, आयुष्य, नाम व गोत्र—ये चार शुभ-अशुभ व पुण्य-पाप दोनों हैं। ये अघाति कर्म हैं।

प्रश्न १२. घाती कर्मों में देशघाती कितने हैं और सर्वघाती कितने?

उत्तर : वैसे चारों घाती कर्म देशघाती हैं। सर्वघाती कोई कर्म नहीं हैं। आत्म गुणों की सर्वथा घात कभी नहीं होती। आंशिक उज्ज्वलता अभवी जीवों के भी होती है। चारों घाती कर्मों का क्षयोपशम न्यूनाधिक रूप में सभी छद्मस्थ जीवों में रहता ही है, अतः कर्म देशघाती ही होते हैं।

प्रश्न १३. घातिक का अर्थ क्या है?

उत्तर : घात खत्म करने वाले को कहा जाता है। यहां कर्म का सन्दर्भ है, अतः आत्म गुणों की घात करने वाले कर्म हैं। कर्मों के दो वर्ग हैं—

१. आत्म गुणों के घाती २. आत्म गुणों के अघाती।

आत्म गुणों के अघाती कर्म केवल भोगे जाते हैं, उनका आत्म गुणों के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न १४. आठ कर्मों में बंधकारक कर्म कितने हैं?

उत्तर : मोहनीय कर्म से अशुभ व नाम कर्म से शुभ कर्म का बंध होता है। शेष छह कर्मों से शुभ-अशुभ दोनों का बंध नहीं होता।

प्रश्न १५. कितने कर्मों का कौन से गुणस्थान में बंध होता है?

उत्तर : एक कर्म (सात वेदनीय) का बंध—ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में।

छह कर्मों (मोहनीय व आयुष्य को छोड़कर)का बंध—केवल दसवें गुणस्थान में।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

सात कर्मों (आयुष्य को छोड़कर) का बंध—तीसरे, आठवें व नौवें गुणस्थान में।

सात-आठ कर्मों का बंध—पहले, दूसरे तथा चौथे से सातवें गुणस्थान में।

प्रश्न १६. कर्मों का अस्तित्व (सत्ता) कौन से गुणस्थान तक है?

उत्तर : मोहनीय कर्म का अस्तित्व ग्यारहवें गुणस्थान तक रहता है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म का बारहवें गुणस्थान तक रहता है। शेष चार अघात्य कर्म का चौदहवें गुणस्थान तक रहता है।

प्रश्न १७. भवोपग्राही कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर : चार अघात्य कर्म ही भवोपग्राही कर्म हैं। ये कर्म जीवन के अंत तक रहते हैं। इस दृष्टि से इन्हें भवोपग्राही कर्म कहते हैं। ये चौदहवें गुणस्थान तक बने रहते हैं।

प्रश्न १८. कर्म के क्या कार्य हैं?

उत्तर :

ज्ञानावरणीय	—	ज्ञान-प्राप्ति में बाधा
दर्शनावरणीय	—	दर्शन-प्राप्ति में बाधा
वेदनीय	—	सुख व दुःख की अनुभूति
मोहनीय	—	मूढ़ता की उत्पत्ति
आयुष्य	—	भव स्थिति
नाम	—	शुभ-अशुभ शरीर-निर्माण, अंगोपांग आदि
गोत्र	—	अच्छी व बुरी दृष्टि से देखे जाना
अंतराय	—	आत्म शक्ति की उपलब्धि में बाधक

प्रश्न १९. कर्म की स्थिति कितनी है?

उत्तर :

कर्म	जघन्य	उत्कृष्ट
ज्ञानावरणीय	अन्तर्मुहूर्त्त	३० करोड़ाकरोड़ सागर
दर्शनावरणीय	अन्तर्मुहूर्त्त	३० करोड़ाकरोड़ सागर
वेदनीय	अन्तर्मुहूर्त्त	३० करोड़ाकरोड़ सागर
दर्शन मोहनीय	अन्तर्मुहूर्त्त	७० करोड़ाकरोड़ सागर
चारित्र मोहनीय	अन्तर्मुहूर्त्त	४० करोड़ाकरोड़ सागर
आयुष्य	अन्तर्मुहूर्त्त	करोड़ पूर्व के एक तिहाई भाग अधिक ३३ सागर
नाम	८ मुहूर्त्त	२० करोड़ाकरोड़ सागर
गोत्र	८ मुहूर्त्त	२० करोड़ाकरोड़ सागर
अन्तराय	अन्तर्मुहूर्त्त	३० करोड़ाकरोड़ सागर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २०. कर्म के दृष्टान्त कौन से हैं?

उत्तर : कर्म के आठ दृष्टान्त हैं—

ज्ञानावरणीय कर्म	—	आंख की पट्टी के समान
दर्शनावरणीय कर्म	—	प्रहरी के समान
वेदनीय कर्म	—	मधुलिप्त तलवार की धार के समान
मोहनीय कर्म	—	मद्यपान के समान
आयुष्य कर्म	—	खोड़े के समान
नाम कर्म	—	चित्रकार के समान
गोत्र कर्म	—	कुम्हार के समान
अंतराय कर्म	—	भंडारी (कोषाध्यक्ष) के समान

प्रश्न २१. कषाय के सोलह उदाहरण कौन से हैं?

उत्तर : कषाय के सोलह उदाहरण हैं—

अनन्तानुबंधी क्रोध	—	पत्थर की रेखा के समान
अनन्तानुबंधी मान	—	पत्थर के स्तम्भ के समान
अनन्तानुबंधी माया	—	बांस की जड़ के समान
अनन्तानुबंधी लोभ	—	कृमि-रेशम के रंग के समान
अप्रत्याख्यानी क्रोध	—	भूमि की रेखा के समान
अप्रत्याख्यानी मान	—	अस्थि के स्तम्भ के समान
अप्रत्याख्यानी माया	—	मेंढ़े के सींग के समान
अप्रत्याख्यानी लोभ	—	कीचड़ के रंग के समान
प्रत्याख्यानी क्रोध	—	बालू की रेखा के समान
प्रत्याख्यानी मान	—	काष्ठ के स्तम्भ के समान
प्रत्याख्यानी माया	—	चलते बैल के मूत्र की धार के समान
प्रत्याख्यानी लोभ	—	गाड़ी के खंजन के समान
संज्वलन क्रोध	—	जल की रेखा के समान
संज्वलन मान	—	लता के स्तम्भ के समान
संज्वलन माया	—	छिले हुए बांस की छाल के समान
संज्वलन लोभ	—	हल्दी के रंग के समान

प्रश्न २२. कषाय चतुष्क से किन आत्मिक गुणों का अभिघात (विनाश) होता है?

उत्तर : अनन्तानुबंधी चतुष्क से सम्यक्त्व का अभिघात
अप्रत्याख्यानी चतुष्क से देशव्रत का अभिघात

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रत्याख्यानी चतुष्क से महाव्रत का अभिघात

संज्वलन चतुष्क से यथाख्यात का अभिघात

प्रश्न २३. प्रत्येक प्रकृति किसे कहते हैं?

उत्तर : जो प्रकृति स्वयं में एक है, जिसके कोई भेद-प्रभेद नहीं है, उसे प्रत्येक प्रकृति कहते हैं। उसकी संख्या आठ हैं—

१. अगुरु	२. उपघात	३. पराघात
४. उच्छ्वास	५. आतप	६. उद्योत
७. निर्माण	८. तीर्थंकर[1]	

प्रश्न २४. पिंड प्रकृति किसे कहते हैं?

उत्तर : जिसके अवांतर प्रकृति के रूप में और भी भेद होते हैं, उसे पिंड-प्रकृति कहते हैं। उसकी संख्या चौदह हैं—

१. गति	२. जाति	३. शरीर
४. अंगोपांग	५. बंधन	६. संघात
७. संस्थान	८. संहनन	९. वर्ण
१०. गंध	११. रस	१२. स्पर्श
१३. आनुपूर्वी	१४. विहायोगति[2]	

प्रश्न २५. आयुष्य कर्म बंध में काम आने वाले करण कौन से हैं?

उत्तर : जीव अगले जन्म के आयुष्य बंध की जो प्रवृत्ति करता है, उसे करण कहते हैं, उसके मूल पांच प्रकार हैं—

१. द्रव्य करण	२. क्षेत्र करण	३. काल करण
४. भव करण	५. भाव करण	

प्रश्न २६. द्रव्य करण किसे कहते हैं?

उत्तर : कर्म वर्गणाओं को आकर्षित कर आत्मसात् करना तथा उन्हें स्कंध के रूप में बांधना अर्थात् कार्मण शरीर के रूप में परिणत करना द्रव्य करण है।

प्रश्न २७. क्षेत्र करण किसे कहते हैं?

उत्तर : जिस क्षेत्र से जीव कर्म वर्गणा को ग्रहण कर कार्मण शरीर के रूप में परिणत करता है, उसे क्षेत्र करण कहते हैं। यह अपने संलग्न कर्म पुद्गलों को ही ग्रहण

१. इनकी परिभाषाएं देखें परिशिष्ट १ में।

२. इनके प्रकार व परिभाषाएं देखें परिशिष्ट १ में।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

करता है। गृहीत कर्म वर्गणा कितने क्षेत्र को अवगाहित करती है तथा किस क्षेत्र विशेष में उदय में आएगी, इस निर्धारण को भी क्षेत्र करण कहते हैं।

प्रश्न २८. जिस क्षेत्र में जीव अवस्थित है, वहां से कुछ आकाश प्रदेश छोड़कर अगले आकाश प्रदेश पर स्थित चतुःस्पर्शी पुद्गल वर्गणा को ग्रहण कर सकता है?

उत्तर : नहीं कर सकता। अपने संलग्न आकाश प्रदेश में स्थित पुद्गल वर्गणा को ही जीव ग्रहण कर सकता है।

प्रश्न २९. संलग्न आकाश प्रदेश स्थित पुद्गलों से अधिक पुद्गल वर्गणा को ग्रहण करना हो, तो वहां क्या होगा?

उत्तर : संलग्न आकाश प्रदेश का तात्पर्य मात्र एक आकाश प्रदेश नहीं, उसके पार्श्ववर्ती आकाश प्रदेश भी एक-दूसरे से संलग्न है, वहां के पुद्गल ग्रहण कर लेते हैं। मध्यवर्ती आकाश प्रदेश छोड़कर उससे आगे के आकाश प्रदेशों पर स्थित पुद्गल वर्गणा को ग्रहण नहीं कर सकते।

प्रश्न ३०. काल करण किसे कहते हैं?

उत्तर : कर्म पुद्गलों को ग्रहण करने में जितना समय लगता है तथा वे पुद्गल जितने समय तक आत्मा के साथ जुड़े रहेंगे, उसे काल करण कहते हैं।

प्रश्न ३१. भव करण किसे कहते हैं?

उत्तर : गृहीत कर्म वर्गणा जिस भव में भोगी जाती है, उसे भव करण कहते हैं।

प्रश्न ३२. एक कर्म की वर्गणा अधिकतम कितने भव तक भोगी जा सकती है?

उत्तर : आठ कर्मों में एक आयुष्य कर्म की वर्गणा मात्र एक भव में भोगी जाती है, शेष सात कर्मों की वर्गणा एक भव या अनेक भवों तक भोगी जा सकती है। कर्म बंध में काल का निर्धारण होता है। उस काल में वह कितने भव करता है, इसकी निश्चित संख्या नहीं होती। पर उस काल में जितने भव करता है, उतने भव तक उस कर्म वर्गणा को भोगना होता है। कर्म बंध का अधिकतम कालमान सत्तर करोड़ाकरोड़ सागरोपम है। उसके भोगने में असंख्य भव लग सकते हैं।

प्रश्न ३३. भाव करण किसे कहते हैं?

उत्तर : पूर्वोक्त चार करण के रूप में जो कर्मों का बंध होता है, उसके उदय को भाव करण कहते हैं।

प्रश्न ३४. करण की उत्तर प्रकृतियां कितनी हैं?

उत्तर : करण की उत्तर प्रकृतियां ५५ हैं—

द्रव्य-५, शरीर-५, इन्द्रिय-५, मन-४, वचन-४, कषाय-४, लेश्या-६, संज्ञा-४, दृष्टि-३, समुद्घात-७, वेद-३, आश्रव-५ = कुल ५५

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२. अवस्था व समवाय

प्रश्न १. कर्म की कितनी अवस्थाएं हैं?

उत्तर : कर्म की दस अवस्थाएं हैं—

१. बंध २. उद्वर्तन ३. अपवर्तन ४. सत्ता
५. उदय ६. उदीरणा ७. संक्रमण ८. उपशम
९. निधत्ति १०. निकाचना

प्रश्न २. कर्म की अवस्थाओं में उदयकालीन कितनी व बंधकालीन अवस्थाएं कितनी हैं?

उत्तर : उदयकालीन अवस्थाएं — उदय, उदीरणा
बंधकालीन अवस्थाएं — बंध, सत्ता, उपशम
उदय व बंध दोनों — अवशिष्ट पांच
उदीरणा वैसे उदय में लाने की एक प्रक्रिया है।

प्रश्न ३. बंध किसे कहते हैं?

उत्तर : आत्म प्रदेशों के साथ कर्म पुद्गलों का चिपकना बंध है।

प्रश्न ४. बंध के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : बंध के चार प्रकार हैं—

१. प्रकृति बंध — कर्मों का स्वभाव
२. स्थिति बंध — कर्मों का कालमान
३. अनुभाग बंध — कर्मों की फल देने की शक्ति
४. प्रदेश बंध — कर्मों का दल संचय

प्रश्न ५. कर्म बंध के चार प्रकारों का क्रम क्या है?

उत्तर : चार ही बंध युगपत् प्रारंभ होते हैं। जीव कोई भी शुभाशुभ प्रवृत्ति करता है, तो उसके ये चारों बंध एक साथ शुरू होते हैं। इसको एक दृष्टांत के द्वारा सम्यक् रूप से समझा जा सकता है। डॉक्टर रोगी के इंजेक्शन लगाता है, तो चार कार्य एक साथ फलित होने प्रारंभ हो जाते हैं। उन फलितों के साथ इन चार बंध की तुलना की जा सकती है—

१. प्रकृति बंध — इंजेक्शन का स्वभाव गर्म है या ठंडा, कठोर है या सरल

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२. स्थिति बंध	—	इंजेक्शन का अमुक समय तक असर
३. अनुभाग बंध	—	इंजेक्शन के कार्य करने की शक्ति
४. प्रदेश बंध	—	इंजेक्शन का पूरे शरीर में खून में मिल जाना।

प्रश्न ६. उद्वर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर : स्थिति बंध व अनुभाग बंध के बढ़ने को उद्वर्तन कहते हैं।

प्रश्न ७. अपवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर : स्थिति बंध व अनुभाग बंध के घटने को अपवर्तन कहते हैं। उद्वर्तन व अपवर्तन के कारण कोई कर्म दीर्घावधि के बाद फल देता है, कोई शीघ्र फल देता है। किसी कर्म के फल देने की शक्ति तीव्र हो जाती है, किसी की मंद।

प्रश्न ८. सत्ता किसे कहते हैं।

उत्तर : बंध के बाद जब तक कर्म वर्गणा आत्मा के साथ अनुबंधित रहती है, उसे सत्ता कहते हैं।

प्रश्न ९. उदय किसे कहते हैं?

उत्तर : अबाधाकाल पूर्ण होने पर जब कर्म शुभ-अशुभ रूप में फल देता है, उसे उदय कहते हैं। उदय के दो प्रकार हैं—

१. विपाकोदय (फलोदय) २. प्रदेशोदय

जो कर्म अपना फल देकर नष्ट हो जाता है, वह विपाकोदय है। जो कर्म बिना कोई फल दिये नष्ट हो जाता है, केवल आत्म-प्रदेशों में भोगा जाता है, उसे प्रदेशोदय कहते हैं। कोई भी कर्म बिना विपाकोदय के फल नहीं दे सकता।

प्रश्न १०. कर्म किस रूप में फल देता है?

उत्तर : कर्म की जिस प्रकृति का उदय होता है, उसी प्रकृति के अनुरूप वह फल देता है।

प्रश्न ११. क्या फल प्राप्ति में द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि की कोई भूमिका है?

उत्तर : कर्म के विपाकोदय से होने वाली फल प्राप्ति में द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव की अनुकूलता जरूरी है। प्रदेशोदय में फल प्राप्ति की बाहर अनुभूति नहीं होती, अतः प्रदेशोदय में उनकी कोई भूमिका नहीं है।

प्रश्न १२. क्या कर्म के अशुभ फल को रोका जा सकता है?

उत्तर : जप, ध्यान आदि से अशुभ फल को रोका जा सकता है। जप आदि से कर्म-निर्जरा होती है। जब कर्मों का निर्जरण हो जाता है, तब कर्मों के अशुभ फल देने की बात स्वतः समाप्त हो जाती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न १३. क्या उदय के बिना बंधे हुए कर्म फल देते हैं?

उत्तर : उदय के बिना बंधे हुए कर्म फल नहीं दे सकते। फल देने की अवस्था मात्र उदयकाल ही है। उसी समय वे जीव को सुख-दुःख का अनुभव करवाते हैं।

प्रश्न १४. क्या कर्मफल व ग्रहफल एक हैं?

उत्तर : कर्मफल स्वकृत कर्मों का फल है। ग्रहफल जीवन में होने वाली शुभ-अशुभ घटनाओं की भविष्यवाणी करने व कर्मों के प्रदेशोदय, विपाकोदय में माध्यम बनते हैं। ग्रहफल ज्योतिष-शास्त्र का विषय है। जैन मतानुसार शुभ-अशुभ घटनाएं कर्मजन्य हैं। ग्रह उनकी अवगति में सहायक बनते हैं और कर्मफल के विपाकोदय की भूमिका निर्मित करते हैं।

प्रश्न १५. उदीरणा किसे कहते हैं?

उत्तर : उदय में आने वाले कर्म दलिकों (समूह) को निर्धारित अवधि से पूर्व प्रयत्न विशेष से पहले उदय में लाने को उदीरणा कहते हैं। उदीरणा से पूर्व अपवर्तन जरूरी होता है। कर्मों की स्थिति कम होने से वे शीघ्र उदय प्राप्त दलिकों के साथ भोग लिए जाते हैं।

प्रश्न १६. अबाधाकाल किसे कहते हैं?

उत्तर : जो कर्म प्रकृति जितने काल की बंधी हुई है, उसके एक निश्चित कालमान तक उदय में न आने को अबाधाकाल कहते हैं। जैसे—कोई कर्म प्रकृति एक करोड़ाकरोड़ सागर की स्थिति वाली बंधी है, तो उसका अबाधाकाल सौ वर्ष होगा।

प्रश्न १७. अबाधाकाल व सत्ता में क्या अन्तर है?

उत्तर : अबाधाकाल व सत्ता के अंतर को एक उपनय से भली-भांति समझा जा सकता है। एक कुंड (हौद) पानी से लबालब भरा है। उसमें से पानी निकालने के लिए मशीन लगा दी। पानी कुंड से निकलना शुरू हो गया और वह चौबीस घंटे में खाली हो गया। पानी निकलने से पूर्व जितने समय कुंड में पानी भरा था, उसके सदृश अबाधाकाल है। पानी निकलने के पहले क्षण से ही अबाधाकाल संपन्न हो गया। इसी तरह कर्म प्रकृति के उदय के प्रथम समय में ही अबाधाकाल पूरा हो जाता है। उस कुंड से पानी एक साथ नहीं निकलता, पर निकलना शुरू हो गया। जब तक पानी की अंतिम बूंद अंदर है, तब तक वह सत्ता रूप है। कर्म प्रकृति का उदय शुरू हो गया और वह एक हजार वर्ष तक चलने वाला है। उस प्रकृति की हजार वर्ष तक सत्ता रहेगी।

प्रश्न १८. संक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर : शुभाशुभ प्रवृत्ति से कर्म की उत्तर प्रकृतियों का अपनी सजातीय प्रकृतियों में

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बदल जाना संक्रमण है। जैसे—मति ज्ञानावरणीय का श्रुत ज्ञानावरणीय व श्रुत ज्ञानावरणीय का मति ज्ञानावरणीय में, क्रोध का मान व मान का क्रोध के रूप में बदल जाना संक्रमण है। ज्ञानावरणीय का मोहनीय आदि कर्म प्रकृतियों में संक्रमण नहीं होता।

प्रश्न १९. क्या सभी कर्म प्रकृतियों का संक्रमण होता है?

उत्तर : आयुष्य कर्म का संक्रमण नहीं होता। दर्शन मोह और चारित्र मोह का परस्पर में संक्रमण नहीं होता। निधत्ति व निकाचित बंधी कर्म-प्रकृतियों का संक्रमण नहीं होता। शेष समस्त कर्म प्रकृतियों का परस्पर संक्रमण हो सकता है।

प्रश्न २०. सोपक्रमी व निरुपक्रमी आयुष्य किसे कहते हैं?

उत्तर : जिस आयुष्य कर्म के उपक्रम-उपघात लगता है, वह सोपक्रमी आयुष्य होता है। जिसके कोई उपक्रम नहीं लगता, वह निरुपक्रमी आयुष्य है। जितने वर्ष का आयुष्य लेकर कोई जीव आता है उसमें एक समय का भी अंतर नहीं पड़ता, उसे निकाचित आयुष्य कहते हैं।

प्रश्न २१. क्या अकाल मृत्यु होती है?

उत्तर : सोपक्रमी आयुष्य वाले की अकाल मृत्यु हो सकती है। सौ वर्ष भोगे जाने वाले आयुष्य को उपघात लगने वाले अन्तर्मुहूर्त्त में भोगा जा सकता है।

प्रश्न २२. उपघात कैसे लगती है?

उत्तर : उपघात सात प्रकार से लग सकती हैं—

१. अध्यवसान — राग, द्वेष, भय आदि की तीव्रता
२. निमित्त — शस्त्र प्रयोग
३. आहार — आहार की न्यूनाधिकता
४. वेदना — नयन आदि की तीव्रतम वेदना
५. पराघात — गड्ढ़े आदि में गिरना
६. स्पर्श — सांप, बिच्छू आदि का स्पर्श
७. आन-अपान — उच्छ्वास, निःश्वास का निरोध

प्रश्न २३. क्या दोनों आयुष्य सभी जीवों में होते हैं?

उत्तर : देव, नारक के निरुपक्रमी आयुष्य ही होता है। मनुष्यों में चरम शरीरी, तिरेसठ शलाकापुरुष, यौगलिकों के निरुपक्रमी आयुष्य होता है। शेष सभी जीवों में दोनों प्रकार के आयुष्य होते हैं।

प्रश्न २४. उपशम किसे कहते हैं?

उत्तर : मोहकर्म की सर्वथा अनुदय अवस्था को उपशम कहते हैं। उपशम में मोहनीय

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कर्म का प्रदेशोदय व विपाकोदय, दोनों रुक जाते हैं। यह अवस्था मात्र अन्तर्मुहूर्त्त रहती है।

प्रश्न २५. उपशम में जब सर्वथा अनुदय है, फिर इसे कर्म की अवस्थाओं में कैसे लिया ?

उत्तर : उपशम में सर्वथा अनुदय है, पर मोह कर्म सत्ता रूप में विद्यमान रहता है, इसलिए इसका कर्म की अवस्थाओं में ग्रहण किया गया है।

प्रश्न २६. उपशम कर्म की एक अवस्था है, फिर यह शुभ है या अशुभ, सावद्य है या निरवद्य ?

उत्तर : मोह कर्म की उदयमान अवस्था के बीच में अन्तर्मुहूर्त्त तक सर्वथा अनुदय रहना उपशम है, उस समय में प्रकृति के अनुरूप सम्यक्त्व व चारित्र, दोनों की प्राप्ति होती है, इसलिये वह अशुभ नहीं, शुभ है। सावद्य नहीं, निरवद्य है।

प्रश्न २७. उपशम भाव कर्म की अवस्था मात्र है, उसे संवर कैसे माना गया?

उत्तर : उपशम भाव कर्म की वह अवस्था है, जिसका आत्मा पर कोई असर नहीं रहता। इस अवस्था में सम्यक्त्व और चारित्र की प्राप्ति होती है। चारित्र संवर धर्म है, इसलिये उसे संवर कह दिया गया।

प्रश्न २८. निधत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर : जिन कर्म प्रकृतियों में उदीरणा व संक्रमण नहीं होता, उनको निधत्ति कहते हैं।

प्रश्न २९. निकाचना किसे कहते हैं?

उत्तर : जिन कर्मों की जितनी स्थिति व विपाक है, उनको उसी रूप में भोगना निकाचना है। उनका आत्मा के साथ गाढ़ सम्बन्ध होता है।

प्रश्न ३०. निधत्ति व निकाचित में क्या अंतर है?

उत्तर : निकाचित में उद्वर्तन, अपवर्तन, उदीरणा, संक्रमण कुछ नहीं होता। निधत्ति में भी उदीरणा व संक्रमण नहीं होता पर उद्वर्तन, अपवर्तन होता है।

प्रश्न ३१. क्या तप आदि विशिष्ट धार्मिक उपक्रमों से निकाचित कर्म को तोड़ा जा सकता है?

उत्तर : इस बारे में दो चिंतन धाराएं हैं। कई आचार्यों का मत है—तप से निकाचित कर्मों का भी क्षय हो सकता है। देवगुप्त सूरी भी इसी अभिमत के पोषक थे। कई आचार्यों का अभिमत है—तपस्या से निकाचित कर्मों का निर्जरण नहीं हो सकता। उन्हें तो यथावत् भोगना ही पड़ता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ३२. किसी भी परिस्थिति के निर्माण या कार्य की निष्पत्ति में क्या कर्म की ही भूमिका रहती है?

उत्तर : परिस्थिति के निर्माण या कार्य की निष्पत्ति में केवल कर्म की भूमिका ही नहीं रहती। इसके लिए कर्म सहित पांच कारण माने गए हैं—

१. काल २. स्वभाव ३. कर्म
४. पुरुषार्थ ५. नियति

इन पांचों को समवाय कहा जाता है।

प्रश्न ३३. काल को कारण क्यों कहा गया है?

उत्तर : किसी भी कार्य की निष्पत्ति में काल के परिपाक की महती अपेक्षा है। शुभ, अशुभ कर्मों का फल तुरन्त नहीं मिलता, कालांतर में एक निश्चित समय पर ही मिलता है। तीर्थंकर अतुलबली होते हैं, पर जन्म के साथ ही बोलने, चलने आदि की क्रियाएं नहीं कर पाते। दवा लेते ही रोग शांत नहीं होता, बीज-वपन करते ही वह वृक्ष नहीं बनता, वृक्ष बनते ही वह फल नहीं देता। प्रत्येक वस्तु की निष्पत्ति में काल की अहम भूमिका है।

प्रश्न ३४. स्वभाव को कारण क्यों कहा गया है?

उत्तर : हर वस्तु अपने स्वभाव के अनुरूप निर्मित होती है। बीज में वृक्ष बनने का स्वभाव है। बबूल कभी आम पैदा नहीं कर सकता।

प्रश्न ३५. कर्म को कारण क्यों कहा गया है?

उत्तर : एक माता के एक समय में दो बच्चे पैदा हुए। उनमें एक सुरूप व दूसरा कुरूप, एक विद्वान् व दूसरा मूर्ख रह जाता है। यह सब कर्म का ही प्रभाव है। शुभाशुभ कर्म के संयोग से ही व्यक्ति को अनुकूलता व प्रतिकूलता मिलती है।

प्रश्न ३६. पुरुषार्थ को कारण क्यों कहा गया है?

उत्तर : कर्म और पुरुषार्थ का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। कर्म को बांधने व उन्हें विपाकोदय के रूप में भोगने में पुरुषार्थ की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

प्रश्न ३७. नियति को कारण क्यों कहा गया है?

उत्तर : नियति का अर्थ है होनहार अर्थात् एक परिस्थितिगत एवं प्रकृतिगत व्यवस्था। सिद्धांत की भाषा में यह एक निकाचित अवस्था है। पुरुषार्थ से नियति का निर्माण होता है। नियति के निर्मित होने के बाद पुरुषार्थ अकिंचित्कर हो जाता है। सही दिशा में पुरुषार्थ करने के बावजूद यदि उसका परिणाम विपरीत आता है, तो उसे नियति ही मानना होगा। इस प्रकार किसी भी कार्य की निष्पत्ति में पांचों कारणों की आवश्यकता होती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ३८. ईश्वरवादी सुख-दुःख की प्राप्ति में ईश्वर को मुख्य कारण मानते हैं, कर्मवादी कर्म को मानते हैं। इन दोनों में क्या शाब्दिक अंतर ही है या मौलिक ?

उत्तर : ईश्वरवादी व कर्मवादी की मान्यता में मौलिक भेद है। ईश्वरवादी की यह मान्यता है कि ईश्वर की इच्छा के बिना वृक्ष का पत्ता भी नहीं हिलता। जीवों की कोई भी प्रवृत्ति व सुख-दुःख की उपलब्धि ईश्वरकृत होती है। इसमें ईश्वर के अलावा किसी की यह ताकत नहीं जो फेरबदल कर सके। कर्मवादी सुख-दुःख को कर्मकृत मानता है, पर केवल उसे ही सबकुछ नहीं मानता। व्यक्ति अपने सत् पुरुषार्थ से कर्म को तोड़ सकता है, बदल सकता है, अप्रभावी बना सकता है।

प्रश्न ३९. सुखाभिलाषा प्राणीमात्र का स्वभाव है दुःख का नहीं, तो फिर वे स्वयं दुःख क्यों भुगतेंगे ?

उत्तर : सुख-दुःख पुण्य-पाप के अनुसार मिलते हैं, चाहने के अनुसार नहीं। यदि चाहने के अनुरूप मिले, फिर तो कर्म कोई चीज ही नहीं। जो इच्छा की, वही मिल गया। 'बुद्धि कर्मानुसारिणी' यह उक्ति इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। कर्म उदय में आते हैं, बुद्धि वैसा ही व्यवहार करने लग जाती है। बुद्धि जैसा व्यवहार करती है, वैसा ही काम किया जाता है। जैसा काम किया जाता है, वैसा ही फल मिलता है।

३. बंध व विविध

प्रश्न १. कार्मण शरीर और कर्म एक ही है या दोनों में भिन्नता है?

उत्तर : स्थूल रूप में कार्मण शरीर और कर्म एक ही है। इस शरीर का उपादान कर्म ही है। सूक्ष्मता में कर्म वर्गणा के संघात को कार्मण शरीर कहते हैं। संघात में कुछ और पुद्गल स्कंधों की अपेक्षा रहती है। इसमें वर्गणाओं का वर्गणा के साथ एकीभाव जरूरी होता है। अलग-अलग स्थिति, अनुभाग आदि से प्रत्येक कर्म वर्गणा भिन्न-भिन्न है। यही दोनों में अन्तर है।

प्रश्न २. कर्म रूपी या अरूपी, जीव या अजीव?

उत्तर : कर्म रूपी व अजीव है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ३. आत्म प्रदेश अधिक हैं या कर्म प्रदेश?

उत्तर : आत्म प्रदेश से कर्म प्रदेश अधिक हैं। आत्म प्रदेश असंख्य हैं जबकि कर्म की वर्गणाएं अनन्त हैं। एक-एक कर्म वर्गणा के अनन्त-अनन्त प्रदेश हैं।

प्रश्न ४. निर्जरित कर्म वर्गणा चतुःस्पर्शी ही रहती है या अष्टस्पर्शी भी हो सकती है?

उत्तर : निर्जरण होने के बाद कर्म कर्म-वर्गणा के रूप में नहीं रहते, वे केवल पुद्गल रह जाते हैं। वे चतुःस्पर्शी रहकर भी भाषा, मन आदि में प्रयुक्त हो सकते हैं। आहारक, वैक्रिय, तैजस् आदि अष्टस्पर्शी पुद्गल में भी परिणत हो सकते हैं। वे द्विस्पर्शी परमाणु भी बन सकते हैं और पुनः कर्म रूप में भी परिवर्तित हो सकते हैं।

प्रश्न ५. कर्मबंध का मुख्य हेतु क्या है?

उत्तर : कर्मबंध का मुख्य हेतु आश्रव है। ये पांच हैं—मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय व योग। कर्मबंध के हेतुओं का यह एक संक्षिप्त वर्णन है। विस्तार में आठ ही कर्मों के बंध के पृथक्-पृथक् कारण बतलाए गये हैं।[1]

प्रश्न ६. जीव वध से संबंधित कितनी क्रियाएं हैं?

उत्तर : जीव वध से संबंधित क्रियाएं मुख्य रूप से पांच प्रकार की बतलाई गई हैं—

१. कायिकी — हिंसा आदि में प्रवृत्त काया की क्रिया।
२. आधिकरणिकी — शरीर आदि का शस्त्र रूप में प्रयोग करने से होने वाली क्रिया।
३. प्रादोषिकी — प्रद्वेष (कषाय) से होने वाली क्रिया।
४. पारितापनिकी — परिताप-कष्ट पहुंचाने से होने वाली क्रिया।
५. प्राणातिपात क्रिया — प्राणों का अतिपात-समाप्त करने से होने वाली क्रिया।

प्रश्न ७. जीव के कितनी क्रियाएं होती हैं?

उत्तर : जीव कोई भी असत्-क्रिया करता है, तो उसके न्यूनतम प्रथम तीन क्रिया अवश्य होती है। कदाचित् पारितापनिकी के साथ चार व प्राणातिपात क्रिया के साथ पांच क्रिया भी हो सकती है।

प्रश्न ८. कर्म रूपी आत्मा अरूपी है। रूपी व अरूपी का सम्बन्ध कैसे संभव है?

उत्तर : अनादिकाल से संसारी आत्मा कार्मण शरीर से निरन्तर सम्बन्धित है। इस दृष्टि

१. देखें 'कर्मबोध' अध्याय के 'प्रकृति व करण' विभाग में।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

से जीव को कथंचित् रूपी माना गया है। रूपी जीव के साथ रूपी कर्म पुद्गलों के चिपकने में कोई विसंगति नहीं है।

प्रश्न ९. आत्मा-चेतन पर कर्म-जड़ का प्रभाव कैसे पड़ता है?

उत्तर : कर्म का मन, वचन व काया पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इन तीनों का सीधा संबंध आत्मा से है, इसलिए कर्म आत्मा द्वारा आकर्षित होते हैं। स्थूल रूप से भी यह देखा जाता है—शराब पीने वाला व्यक्ति अपनी चेतना को खो बैठता है, पागल सदृश बन जाता है। अचेतन-शराब का चेतन-व्यक्ति पर इतना प्रभाव पड़ता है, फिर कर्म का आत्मा पर प्रभाव क्यों नहीं हो सकता।

प्रश्न १०. कर्म का आत्मा पर किस रूप में असर होता है?

उत्तर : निम्नोक्त चार प्रकार से कर्मों का असर आत्मा पर होता है—

१. आवरण, २. अवरोध, ३. विकार, ४. शुभाशुभ संयोग।

आवरण	—	ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय।
अवरोध	—	आयुष्य, अन्तराय।
विकार	—	मोहनीय।
शुभाशुभ संयोग	—	वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र।

प्रश्न ११. क्या कर्म आत्मा के सभी प्रदेशों के बंधते हैं?

उत्तर : आत्मा के सभी असंख्य प्रदेशों से प्रवृत्ति होती है और सभी आत्म-प्रदेशों के कर्मों की अनन्त वर्गणाएं बंधती हैं। आगमों में वर्णित 'सव्वं सव्वेण बंधई' सिद्धान्त से आत्मा के समस्त प्रदेशों के कर्म का बंधन होता है। कुछ आचार्य आत्मा के आठ रूचक प्रदेशों को सर्वथा अबद्ध मानते हैं।

प्रश्न १२. कर्म वर्गणा का बंध होता है, वे एक कर्म से संबंधित होती है या आठों कर्मों से?

उत्तर : कर्म वर्गणा प्रति समय जीव के बंधती है, उनका क्रम इस प्रकार है—सामान्यतया आयुष्य कर्म को छोड़कर सात कर्मों से वे वर्गणाएं संबंधित हो जाती हैं। जीवन में एक बार आयुष्य कर्म बंधता है, उस समय में बंधने वाली वर्गणाएं आठों कर्मों से संबंधित हो जाती हैं।

प्रश्न १३. बंधने वाली कर्म वर्गणाएं क्या आठों कर्मों में समान रूप में विभक्त होती हैं या न्यूनाधिक?

उत्तर : जिस कर्म की स्थिति ज्यादा हो उसके हिस्से में कर्म पुद्गल ज्यादा आयेंगे किन्तु वेदनीय कर्म कम स्थिति के होंगे, फिर भी उसके हिस्से में कर्म प्रदेश ज्यादा आयेंगे। आयुष्य कर्म एक बार बंधता है, उस समय में भी सबसे थोड़े कर्म

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पुद्गल उसके साथ जुड़ते हैं। उससे विशेषाधिक नाम व गोत्र दोनों के परस्पर में बराबर बंधते हैं। इनसे विशेषाधिक ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय कर्म परस्पर में तुल्य बंधते हैं। इनसे विशेषाधिक मोहकर्म के पुद्गल बंधते हैं। इनसे विशेषाधिक वेदनीय कर्म के हिस्से में आते हैं।

प्रश्न १४. क्या कर्म के उदय के बिना भी कर्म का बंध हो सकता है?

उत्तर : नहीं, ऐसा कोई भी समय नहीं, जहां बंध हो और उदय नहीं हो। संसारी जीवों के प्रतिक्षण कर्म का उदय चलता है।

प्रश्न १५. कर्म का उदय चल रहा है, किन्तु उसका बंध नहीं होता, ऐसा समय कभी आता है?

उत्तर : चौदहवें गुणस्थान के पंच ह्रस्वाक्षर उच्चारण जितने समय में यह प्रसंग जरूर बनता है। जब कर्म का उदय तो चलता है, पर बंध नहीं होता क्योंकि वहां कर्म बंध का मुख्य हेतु आश्रव का पूर्ण निरोध हो चुका होता है।

प्रश्न १६. नाम कर्म के उदय से पुण्य का बंध होता है। चौदहवें गुणस्थान में नाम कर्म का उदय चलता है, फिर वहां कर्म का बंध क्यों नहीं होता?

उत्तर : जहां पुण्य का बंध होता है, वहां नाम कर्म का उदय अवश्य रहता है। जहां नाम कर्म का उदय रहता है, वहां पुण्य का बंध हो ही, यह जरूरी नहीं है। यह एक सार्वभौम तथ्य है कि पुण्य बंध में नाम कर्म की नियमा (अनिवार्यता) है और नाम कर्म के उदय में पुण्य बंध की भजना (अनिवार्यता नहीं) है। चौदहवां गुणस्थान अयोगी है। बिना योग के कर्म बंध होता नहीं, इसलिए उसे अबंधक गुणस्थान माना है।

प्रश्न १७. सात कर्मों का बंध प्रतिसमय माना है, क्या सात कर्मों की सभी उत्तर प्रकृतियों का बंध भी समय-समय होता है?

उत्तर : सभी उत्तर प्रकृतियों का बंध एक साथ नहीं होता। शुभ प्रवृत्ति से जिस समय शुभ कर्म प्रकृतियों का बंध होता है, उस समय प्रवृत्तिजन्य अशुभ कर्म प्रकृति का बंध नहीं होता। ऐसे ही जब त्रस दशक का बंध होता है, तब स्थावर दशक का बंध नहीं होता।

प्रश्न १८. क्या ऐसी भी कोई कर्म प्रकृति है, जिसका बंध हुए बिना अनन्त काल बीत गया?

उत्तर : तीर्थंकर नाम, आहारक नाम कर्म आदि कुछ ऐसी प्रकृतियां है, जिन्हें बांधे बिना अनन्तकाल बीत चुका और आगे व्यतीत हो सकता है। इन प्रकृतियों को अभवी कभी नहीं बांधता। सम्यक्त्वी जीवों में भी कोई-कोई जीव के ही उपरोक्त प्रकृतियों का बंध होता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न १९. तीर्थंकर धर्मोद्योत के मुख्य धुरी होते हैं। उनकी मात्र एक गति मोक्ष की होती है, तदपि उसकी इच्छा क्यों नहीं करनी चाहिये?

उत्तर : तीर्थंकर तीर्थंकर-नाम की प्रकृति के उदय से बनते हैं। किसी भी कर्मजन्य अवस्था की अभिलाषा नहीं की जा सकती। कर्म स्वयं बंधन है, वह तीर्थंकर नाम कर्म ही क्यों न हो, उसकी इच्छा कैसे की जा सकती है।

प्रश्न २०. क्या चौदहवें गुणस्थान में जीव कर्ममुक्त हो जाता है?

उत्तर : चौदहवें गुणस्थान में जीव सकर्मा रहता है। वहां पूर्ण संवर की अवस्था है। चौदहवें गुणस्थान को छोड़ना, चार अघात्य कर्म को क्षीण करना व सिद्ध होना—ये तीनों कार्य युगपत् घटित होते हैं।

प्रश्न २१. क्या शुभ-अशुभ कर्म का बंध युगपत् होता है?

उत्तर : शुभ प्रवृत्ति के समय अशुभ व अशुभ प्रवृत्ति के समय शुभ कर्म का बंध नहीं होता। एक समय में एक का ही बंध होता है। यह योग से संबंधित है। कषाय, प्रमाद, अव्रत आदि से समय-समय पर अशुभ कर्म बंधता है, इस दृष्टि से शुभ-अशुभ दोनों कर्म साथ में बंध सकते हैं।

प्रश्न २२. शुभ कर्म को कैसे तोड़ा जा सकता है?

उत्तर : शुभ कर्म को तोड़ने का वैसे कोई प्रशस्त साधन नहीं है। केवली समुद्घात के समय ही शुभ कर्म तोड़े जाते हैं। यदि पुण्य भोगने में आसक्ति नहीं रहती, तो पुण्य भोगने में पाप का बंध नहीं होता। अशुभ प्रवृत्ति से पुण्य का क्षय तीव्रता से होता है, पर उसी के साथ पाप का बंध भी उतनी ही तीव्रता से होता है, अतः आत्मा हल्की नहीं हो पाती।

प्रश्न २३. मात्र छह आवलिका स्थिति वाले दूसरे गुणस्थान में आयुष्य का बंध हो सकता है, पर अन्तर्मुहूर्त्त स्थिति वाले तीसरे गुणस्थान में नहीं हो सकता, यह क्यों?

उत्तर : प्रतिपाती सम्यक्त्वी जीव दूसरे गुणस्थान का स्पर्श करता है। उसका गिरना नियति है। यह कोई अनिश्चय की स्थिति नहीं है। तीसरे गुणस्थान में संशय की स्थिति रहती है। आयुष्य का निर्धारण स्वयं में एक निश्चय है। यह अनिश्चय व संशय की स्थिति में नहीं होता, इसलिए तीसरे गुणस्थान में आयुष्य का बंध नहीं होता।

प्रश्न २४. क्या छद्मस्थ अकषायी होता है?

उत्तर : छद्मस्थ सकषायी व अकषायी दोनों होते हैं। पहले से दसवें गुणस्थान तक जीव सकषायी छद्मस्थ व ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान में अकषायी छद्मस्थ होता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २५. वीतराग कौन होता है?

उत्तर : जिसने राग व द्वेष को जीत लिया है वह वीतराग होता है। वीतराग में अन्तिम चार गुणस्थान होते हैं। अकषायी, वीतराग पर्यायवाची शब्द हैं। ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान में छद्मस्थ वीतराग व तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में केवली वीतराग होते हैं।

प्रश्न २६. क्या वीतराग के कर्म बंध होता है?

उत्तर : वीतराग के कर्म बंध होता भी है, नहीं भी। तेरहवें गुणस्थान तक निरन्तर कर्म का बंध होता है, चौदहवें गुणस्थान में कर्म बंध का नितान्त अभाव रहता है। कर्म बंध के दो प्रकार हैं—

१. साम्परायिक बंध २. ईर्यापथिक बंध

जो सकषायी हैं उनके साम्परायिक क्रिया से बंध होता है। कषाय व योग की चंचलता साम्परायिक क्रिया का मुख्य हेतु है। दसवें गुणस्थान तक कषाय की विद्यमानता से इस क्रिया से बंध होता है। इसकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट ७० करोड़ाकरोड़ सागरोपम है। ईर्यापथिक का अर्थ है—योग। जहां मात्र योग की चंचलता होती है, वहां ईर्यापथिक बंध होता है। यह पुण्य का बंधन है। इसकी स्थिति दो समय की है। यह ईर्यापथिक बंध केवल वीतराग के होता है।

प्रश्न २७. क्या अन्तराल गति में कर्म बंध होता है?

उत्तर : अन्तराल गति में कर्म बंध होता है। वहां भी मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय आदि की क्रिया चालू है। उनसे निरंतर कर्म बंध होता है।

प्रश्न २८. अन्तराल गति में स्थूल शरीर नहीं होता, स्थूल योग नहीं रहता, फिर कर्म बंध कैसे व किसके होता है?

उत्तर : अन्तराल गति दो प्रकार की होती है—

१. ऋजु गति २. वक्र गति

अन्तराल गति में स्थूल शरीर तो नहीं होता, योगजन्य प्रवाह (धक्का) रहता है। वक्र गति में कार्मण काययोग की चंचलता रहती है। अव्रत व कषाय जीव के साथ अंतराल गति में भी विद्यमान रहते हैं। कर्म पुद्गलों को आकर्षित करने के लिए तो इतना काफी है। कर्मों का बंधन सर्वदा कार्मण शरीर के ही होता है। वह वहां मौजूद रहता है।

प्रश्न २९. कार्मण शरीर का संबंध आत्मा के साथ अनादिकाल से है। अनादिकाल से सम्बन्धित इस शरीर का अलगाव कैसे होगा?

उत्तर : कार्मण शरीर कर्म वर्गणा के संघात को कहते हैं। कर्म वर्गणा का संबंध

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अवधिपूर्वक होता है। अवधि समाप्त होते ही वे कर्म वर्गणा आत्मा से पृथक् हो जाती हैं। स्थिति परिपाक के साथ कर्म वर्गणा छूटती रहती है तथा नई कर्म वर्गणा का बंधन चालू रहता है। प्रवाह रूप में कर्म वर्गणा आत्मा के साथ निरन्तर चलती रहती है। यह प्रवाह जब पूर्णतया रुक जाता है, तब नई कर्म वर्गणा के आगमन का द्वार बन्द हो जाता है और पुरानी कर्म वर्गणा आत्मा से अलग हो जाती है। इस तरह कार्मण शरीर का अलगाव हो जाता है।

प्रश्न ३०. कर्म के विपाकोदय में क्या कोई निमित्त भी कार्यकारी बनता है?

उत्तर : कर्म के विपाकोदय में चार निमित्त कार्यकारी बनते हैं—

१. क्षेत्र विपाक — क्षेत्र विशेष में कर्म का विपाकोदय होना। यथा— किसी व्यक्ति के बैंगलूर जाने से श्वास का रोग हो जाता है, चेन्नई जाने से वह स्वस्थ हो जाता है।

२. जीव विपाक — बिना किसी बाहरी हेतु के क्रोधित होना, द्वेष के भाव उभरना आदि।

३. भाव विपाक — भावना के उतार-चढ़ाव के साथ कर्मों का विपाकोदय होना।

४. भव विपाक — अमुक भव में कर्म की अमुक प्रकृति का विशेष रूप से विपाकोदय होना। यथा—बन्दर के भव में वासना, सर्प के भव में क्रोध की प्रकृति का विशेषतः उदय रहता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

परिशिष्ट - १

नाम कर्म

जिस कर्म के उदय से जीव की शरीर, जाति, गति, यश, अपयश आदि पर्यायें होती हैं, उसे नाम कर्म कहते हैं। संक्षेप में नाम कर्म के दो प्रकार हैं—१. शुभ नाम २. अशुभ नाम। इन दोनों की मूल प्रकृति ४२ बताई गई है, अपेक्षा भेद से ६७, ९३ व १०३ प्रकृतियों का भी उल्लेख मिलता है। ९३ प्रकृतियों का यहां उल्लेख किया जा रहा है। जिसमें ४२, ६७ का समावेश स्वयमेव हो जायेगा।

१. गति नाम—देवत्व आदि पर्याय परिणति को गति कहते हैं।
   १. देव गति* — जिस कर्म का उदय देव भव की प्राप्ति का कारण हो। यह सुख बहुल गति है।
   २. मनुष्य गति* — जिस कर्म का उदय मनुष्य भव की प्राप्ति का कारण हो। यह सुख-दुःख मिश्रित गति है।
   ३. तिर्यंच गति — जिस कर्म का उदय तिर्यंच भव की प्राप्ति का कारण हो। यह दुःख बहुल गति है।
   ४. नरक गति — जिस कर्म का उदय नरक-भव की प्राप्ति का कारण हो। यह महा दुःख बहुल गति है।

२. जाति नाम—जो कर्म जीव की जाति-कोटि का नियामक हो।
   १. एकेन्द्रिय जाति नाम — स्पर्श इंद्रिय वाले
   २. द्वीन्द्रिय जाति नाम — स्पर्श, जिह्वा इंद्रिय वाले
   ३. त्रीन्द्रिय जाति नाम — स्पर्श, जिह्वा और नाक इंद्रिय वाले
   ४. चतुरिन्द्रिय जाति नाम — स्पर्श, जिह्वा, नाक और चक्षु इंद्रिय वाले
   ५. पंचेन्द्रिय जाति नाम* — स्पर्श, जिह्वा, नाक, चक्षु और कान इंद्रिय वाले

३. शरीर नाम—शरीर प्राप्ति के हेतुभूत कर्म पुद्गल।
   १. औदारिक शरीर* — उदार-स्थूल अर्थात् हाड-मांस आदि से बना स्थूल शरीर।

---

* इस चिह्न वाले शुभ नाम कर्म के भेद हैं, अवशिष्ट अशुभ है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२. वैक्रिय शरीर* — छोटे-बड़े आदि विविध रूप-विक्रिया कर सकने वाला शरीर।
३. आहारक शरीर* — आहारक लब्धि से प्राप्त शरीर।
४. तैजस् शरीर* — उष्मामूलक विद्युत् शरीर।
५. कार्मण शरीर* — कर्म शरीर।

४. अंगोपांग नाम—यह शरीर के अंग-प्रत्यंगों की प्राप्ति में निमित्तभूत होता है।
१. औदारिक शरीर* — अंगोपांग नाम
२. वैक्रिय शरीर* — अंगोपांग नाम
३. आहारक शरीर* — अंगोपांग नाम

अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण तैजस् व कार्मण के कोई अंगोपांग नहीं होता। जिस प्रकार पानी का स्वयं का आकार नहीं होता, पर वह पात्र के आधार पर आकार ग्रहण करता है। वैसे ही इन शरीरों का आकार अन्य शरीरों के आकार की भांति होता है, इसलिये उनके अंगोपांग नहीं होते।

५. शरीर बंधन नाम—यह पूर्व गृहीत तथा वर्तमान में ग्रहण किये जाने वाले शरीर पुद्गलों के पारस्परिक सम्बन्ध का हेतुभूत है।
१. औदारिक शरीर — बंधन नाम
२. वैक्रिय शरीर — बंधन नाम
३. आहारक शरीर — बंधन नाम
४. तैजस् शरीर — बंधन नाम
५. कार्मण शरीर — बंधन नाम

६. शरीर-संघात नाम — संघात का अर्थ है एकत्रित करना, जैसे झाड़ू से बिखरे हुए तिनकों को इकट्ठा करना।

शरीर के गृहीत और ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों के संघात या एकीकरण के निमित्तभूत कर्म पुद्गलों को शरीर-संघात नाम कहते हैं।
१. औदारिक शरीर — संघात नाम
२. वैक्रिय शरीर — संघात नाम
३. आहारक शरीर — संघात नाम
४. तैजस् शरीर — संघात नाम
५. कार्मण शरीर — संघात नाम

* इस चिह्न वाले शुभ नाम कर्म के भेद हैं, अवशिष्ट अशुभ है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

७. संहनन नाम — इसके उदय से शरीर की अस्थि-संरचना की मजबूती निर्भर करती है।

१. वज्र ऋषभ नाराच* — संहनन नाम
२. ऋषभ नाराच — संहनन नाम
३. नाराच — संहनन नाम
४. अर्ध नाराच — संहनन नाम
५. कीलिका — संहनन नाम
६. सेवार्त — संहनन नाम

८. संस्थान नाम — यह आकृति रचना का हेतुभूत कर्म पुद्गल है।

१. समचतुरस्र* — संस्थान नाम
२. न्यग्रोध परिमंडल — संस्थान नाम
३. सादि — संस्थान नाम
४. वामन — संस्थान नाम
५. कुब्ज — संस्थान नाम
६. हुंडक — संस्थान नाम

९. वर्ण नाम+ — यह शरीर के रंग पर प्रभाव डालने वाला कर्म है।

१. कृष्ण — वर्ण नाम
२. नील — वर्ण नाम
३. रक्त — वर्ण नाम
४. पीत — वर्ण नाम
५. श्वेत — वर्ण नाम

१०. गंध नाम+ — यह शरीर के गंध पर प्रभाव डालने वाला कर्म है।

१. सुरभि — गंध नाम
२. दुरभि — गंध नाम

११. रस नाम+ — यह शरीर के रस पर प्रभाव डालने वाला कर्म है।

१. तिक्त — रस नाम
२. कटु — रस नाम
३. कषाय — रस नाम
४. आम्ल — रस नाम
५. मधुर — रस नाम

* इस चिह्न वाले शुभ नाम कर्म के भेद हैं, अवशिष्ट अशुभ है।

\+ इनका प्रशस्त रूप शुभ है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१२. स्पर्श नाम[+] — यह शरीर के स्पर्श पर प्रभाव डालने वाला कर्म है।
- १. शीत — स्पर्श नाम
- २. उष्ण — स्पर्श नाम
- ३. स्निग्ध — स्पर्श नाम
- ४. रूक्ष — स्पर्श नाम
- ५. लघु — स्पर्श नाम
- ६. गुरु — स्पर्श नाम
- ७. मृदु — स्पर्श नाम
- ८. कर्कश — स्पर्श नाम

१३. आनुपूर्वी नाम — विग्रह गति से नरक आदि जन्म स्थान में जाते हुए जीव को आकाश प्रदेश की श्रेणी के अनुसार गमन कराने वाला यह हेतुभूत कर्म है।
- १. नरक — आनुपूर्वी नाम
- २. तिर्यंच — आनुपूर्वी नाम
- ३. मनुष्य[*] — आनुपूर्वी नाम
- ४. देव[*] — आनुपूर्वी नाम

१४. विहायोगति नाम — जिस गति से आकाश-स्थान विशेष को पाया जाये, उसे विहायोगति कहते हैं। गमन सदैव आकाश प्रदेश में ही होता है, पृथ्वी पर चलने वाला भी आकाश में चलता है।
- १. प्रशस्त — विहायोगति नाम[*]—हंस, हाथी की भांति शुभ गति।
- २. अप्रशस्त — विहायोगति नाम—ऊँट, गधा आदि की भांति अशुभ गति।

ये चौदह पिंड प्रकृति हैं। जिस एक प्रकृति के कई उपभेद होते हैं उसे पिंड प्रकृति कहते हैं।

१५. त्रस नाम[*] — इसके उदय से जीव में स्वतंत्र रूप से गमनागमन का सामर्थ्य उत्पन्न होता है।

१६. स्थावर नाम — इसके उदय से जीव स्वतंत्र रूप से गमनागमन नहीं कर सकता अर्थात् स्थिर रहता है।

१७. सूक्ष्म नाम — इस कर्म के उदय से ऐसा सूक्ष्म शरीर प्राप्त होता है जो चक्षु से देखा नहीं जाता।

---

* इस चिह्न वाले शुभ नाम कर्म के भेद हैं, अवशिष्ट अशुभ है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१८. बादर नाम* — इस कर्म के उदय से ऐसा स्थूल शरीर प्राप्त होता है जो चक्षु से देखा जा सकता है।

१९. प्रत्येक नाम* — इस कर्म के उदय से जीव को एक शरीर मिलता है अर्थात् एक जीव ही उत्पन्न होता है।

२०. साधारण नाम — इस कर्म के उदय से एक शरीर में अनंत जीवों को रहना पड़ता है।

२१. पर्याप्त नाम* — इसके उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियां पूर्ण कर लेता है।

२२. अपर्याप्त नाम — इसके उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियां पूर्ण नहीं कर सकता क्योंकि पूर्ण होने से पहले ही वह मरण को प्राप्त हो जाता है।

२३. स्थिर नाम* — इसके उदय से शरीर के अवयव मजबूत व स्थिर होते हैं।

२४. अस्थिर नाम — इसके उदय से शरीर के अवयव कमजोर, ढीले-ढ़ाले व अस्थिर होते हैं।

२५. शुभ नाम* — इसके उदय से शरीर सुंदर व लावण्यपूर्ण होता है।

२६. अशुभ नाम — इसके उदय से शरीर सुंदर नहीं होता।

२७. सुभग नाम* — इस कर्म के उदय से जीव बिना किसी उपकार व संबंध के भी सबका प्रिय होता है।

२८. दुर्भग नाम — इस कर्म के उदय से उपकार व संबंध के बावजूद अप्रिय होता है।

२९. सुस्वर नाम* — इस कर्म के उदय से जीव का स्वर मधुर होता है।

३०. दुःस्वर नाम — इस कर्म के उदय से जीव का स्वर कर्कश या खराब होता है।

३१. आदेय नाम* — इस कर्म के उदय से जीव का वचन आदेय-लोकमान्य एवं प्रिय होता है।

३२. अनादेय नाम — इस कर्म के उदय से जीव का वचन अनादेय-लोकमान्य नहीं होता एवं अप्रिय होता है।

३३. यशःकीर्ति नाम* — इस कर्म के उदय से जीव को यश एवं कीर्ति मिलती है।

३४. अयशःकीर्ति नाम — इस कर्म के उदय से जीव को अयश एवं अकीर्ति मिलती है।

आठ प्रत्येक प्रकृति इस प्रकार है। जिस प्रकृति का कोई भेद नहीं होता, जो स्वयं में एक होती है उसे प्रत्येक प्रकृति कहते हैं।

३५. अगुरुलघु नाम* — इस कर्म के उदय से जीव अधिक हल्का और अधिक भारी नहीं होता।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३६. उपघात नाम — इसके उदय से जीव अपने अधिक या विकृत अवयवों से दुःख पाता है।

३७. पराघात नाम* — इसके उदय से जीव विजय को प्राप्त करता है और प्रतिपक्षी पराजित होता है।

३८. उच्छ्वास नाम* — इस कर्म के उदय से जीव सुखपूर्वक श्वासोच्छ्वास लेता है।

३९. आतप नाम* — इस कर्म के उदय से जीव स्वयं तो शीतल होता है पर अन्य के लिए उष्ण तापयुक्त होता है।

४०. उद्योत नाम* — इसके उदय से जीव के शरीर की कांति उज्ज्वल व शीतल प्रकाशयुक्त होती है।

४१. निर्माण नाम* — इसके उदय से शरीर फोड़े-फुंसियों से रहित होता है अथवा शरीर के अवयव यथास्थान व्यवस्थित होते हैं।

४२. तीर्थंकर नाम* — इस कर्म के उदय से जीव तीर्थंकरत्व को प्राप्त करता है।

ये मूल ४२ प्रकृतियां हैं, इसके ९३ भेद हो जाते हैं, उनका क्रम इस प्रकार है—

चौदह पिंड प्रकृति के ६५ भेद होते हैं।

गति ४+जाति ५+शरीर ५+अंगोपांग ३+शरीर बंधन ५+शरीर संघात ५+संहनन ६+संस्थान ६+वर्ण ५+गंध २+रस ५+स्पर्श ८+आनुपूर्वी ४+विहायोगति २=६५+त्रस व स्थावर दशक (त्रस नाम से अयशकीर्ति नाम तक) २०=८५+८ प्रत्येक प्रकृति =९३

जहां १०३ प्रकृतियों का उल्लेख आता है वहां शरीर बंधन नाम के ५ भेदों की जगह १५ भेद किये गये हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. औदारिक औदारिक बंधन नाम
२. औदारिक तैजस् बंधन नाम
३. औदारिक कार्मण बंधन नाम
४. वैक्रिय बंधन नाम
५. वैक्रिय तैजस् बंधन नाम
६. वैक्रिय कार्मण बंधन नाम
७. आहारक आहारक बंधन नाम
८. आहारक तैजस् बंधन नाम
९. आहारक कार्मण बंधन नाम
१०. औदारिक तैजस् कार्मण बंधन नाम
११. वैक्रिय तैजस् कार्मण बंधन नाम
१२. आहारक तैजस् कार्मण बंधन नाम
१३. तैजस् तैजस् बंधन नाम
१४. तैजस् कार्मण बंधन नाम
१५. कार्मण कार्मण बंधन नाम

❑❑❑

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

धर्म बोध

१. दान धर्म
२. शील धर्म
३. तप धर्म
४. भाव धर्म

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१. दान धर्म

प्रश्न १. दान किसे कहते हैं?

उत्तर : 'दीयते ति दानम्'—देने को दान कहते हैं।

प्रश्न २. दान के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : दान के दो प्रकार हैं—

१. व्यावहारिक २. पारमार्थिक

अथवा

१. लौकिक २. लोकोत्तर

प्रश्न ३. लौकिक व लोकोत्तर दान किसे कहते हैं?

उत्तर : सांसारिक प्रवृत्ति चलाने व असंयमी के पोषण के लिए दान देने को लौकिक दान कहते हैं। जो दान संयमी के विकास में सहायक होता है, उसे लोकोत्तर दान कहते हैं।

प्रश्न ४. दान के और कौन से प्रकार हैं?

उत्तर : दान के निम्न दस प्रकार और हैं—

१. अनुकंपा दान — करुणा से देना।
२. संग्रह दान — सहायता के लिए देना।
३. भय दान — भय से देना।
४. कारुण्य दान — मृतक के पीछे देना।
५. लज्जा दान — लज्जावश देना।
६. गौरव दान — गर्वपूर्वक देना।
७. अधर्म दान — हिंसा आदि पापों में आसक्त व्यक्तियों को देना।
८. धर्म दान — संयमी को देना।
९. करिष्यति दान — अमुक आगे सहयोग करेगा, इसलिए उसे देना।
१०. कृतमिति दान — अमुक ने सहयोग किया था, इसलिए उसे देना।

प्रश्न ५. दस दान में लौकिक व लोकोत्तर कितने हैं?

उत्तर : धर्म दान लोकोत्तर व शेष नौ दान लौकिक हैं।

प्रश्न ६. दस दान में सावद्य कितने व निरवद्य कितने हैं?

उत्तर : धर्म दान निरवद्य व शेष नौ दान सावद्य हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ७. नौ दान लौकिक हैं, तो अधर्म दान का पृथक् उल्लेख कैसे हुआ?

उत्तर : अधर्म दान निंदनीय है। जैसे—वेश्या, कसाई आदि को प्रसन्न रखने के लिए उनकी इच्छाओं की पूर्ति करना। प्रत्यक्ष में यह लोक विरुद्ध है। इस प्रकार के दान को अधर्म दान कहते हैं। शेष आठ दान लोकोपयोगी हैं, किन्तु हैं सभी लौकिक।

प्रश्न ८. लोकोत्तर दान के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : लोकोत्तर दान के तीन प्रकार हैं—

१. ज्ञान दान — तत्त्व ज्ञान कराना व शुद्ध मार्ग पर व्यक्ति को प्रस्थापित करना।
२. संयति दान — सुपात्र को प्रासुक-निर्जीव द्रव्य देना।
३. अभय दान — षट्कायिक जीवों की हिंसा का परित्याग कराना।

प्रश्न ९. गोदान, भूमिदान आदि लौकिक हैं या लोकोत्तर?

उत्तर : गोदान, भूमिदान आदि लौकिक हैं।

प्रश्न १०. सुपात्र से क्या तात्पर्य है?

उत्तर : जीवों की दो कोटियां हैं—(१) मुनि (२) गृहस्थ। गृहस्थ असंयमी व संयमासंयमी (श्रावक) दोनों होते हैं। मुनि संयमी होते हैं, वे ही सुपात्र कहलाते हैं।

प्रश्न ११. सुपात्र की कसौटी क्या है?

उत्तर : जो पांच महाव्रतों का निरतिचार पालन करते हैं, वे सुपात्र हैं। उनके अतिरिक्त सभी भिक्षा देने की दृष्टि से अपात्र हैं।

प्रश्न १२. दान कौन सा भाव कौन सी आत्मा?

उत्तर : लोकोत्तर दान भाव चार — औदयिक छोड़कर; आत्मा एक — योग
लौकिक दान भाव दो — औदयिक, पारिणामिक; आत्मा एक — योग

प्रश्न १३. दान छह में कौन, नौ में कौन?

उत्तर : लोकोत्तर दान छह में — जीव, नौ में तीन — जीव, संवर, निर्जरा।
लौकिक दान छह में — जीव, नौ में दो — जीव, आश्रव।

प्रश्न १४. क्या दान देने का अधिकारी गृहस्थ ही है?

उत्तर : गृहस्थ के पास विविध प्रकार की वस्तुएं होती हैं, इसलिए दान देने का मूल अधिकारी गृहस्थ ही है। साधु अपनी भिक्षा में समागत वस्तु को दूसरे साधर्मिक मुनियों को सभक्ति देता है, उसे आगमों में 'वैयावृत्त्य' कहा है। इसमें मात्र शब्द भेद है, निर्जरा में कोई फर्क नहीं है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न १५. क्या दान मात्र पुण्य का हेतु है?

उत्तर : जो दान संयमी की जीवन-यात्रा में सहायक होता है, उसमें धर्म है, पुण्य है। जो दान असंयमी व संयमासंयमी की जीवन-यात्रा में सहायक होता है, वह धर्म व पुण्य का हेतु नहीं हो सकता।

प्रश्न १६. करण किसे कहते हैं?

उत्तर : योग के द्वारा होने वाली क्रिया को करण कहते हैं। उसके तीन प्रकार हैं— करना, कराना व अनुमोदन करना। आचार्यों ने कहीं-कहीं योग को भी करण कहा है।

प्रश्न १७. क्या तीनों करण का स्वरूप सदृश है?

उत्तर : तीनों करण का स्वरूप सदृश है। यदि किसी प्रवृत्ति के करने में पाप होता है, तो कराने में भी पाप होता है और अनुमोदन में भी पाप होता है। इसी भांति जिस प्रवृत्ति के करने में धर्म होता है, तो उसके कराने व अनुमोदन में भी धर्म होता है।

प्रश्न १८. करने, कराने व अनुमोदन करने वाले तीनों व्यक्ति पृथक्-पृथक् हों, तो क्या धर्म व अधर्म दोनों प्रवृत्तियां उनमें संभव हैं?

उत्तर : पृथक्-पृथक् व्यक्तियों द्वारा होने वाली उपरोक्त तीनों प्रवृत्तियां एक ही प्रक्रिया का अंग हैं। सामायिक करना धर्म है, तो उसे कराने या उसका अनुमोदन करने वाले व्यक्तियों को भी धर्म होगा। हिंसा करना पाप है, तो उसे उत्प्रेरित करने वाले या अनुमोदन करने वालों को भी पाप होगा।

प्रश्न १९. असंयमी का खाना-पीना आदि क्रियाएं पाप हैं, पर उनको खिलाने आदि की प्रेरणा या व्यवस्था करने वालों को क्या धर्म नहीं हो सकता?

उत्तर : जिस व्यक्ति के खाने-पीने में धर्म व पुण्य नहीं होता, उसको देने में धर्म कैसे हो सकता है? खाने में यदि पाप है, तो खिलाने में भी पाप है। तीनों करण समान चलते हैं।

प्रश्न २०. संयमी को देने में धर्म-पुण्य होता है, असंयमी को देने में नहीं, यह कैसे?

उत्तर : असंयमी को खिलाने-पिलाने आदि से उनके असंयम का पोषण होता है। असंयमी के शरीर को परिग्रह माना गया है। अठारह पापों में परिग्रह को पांचवां पाप माना है। फिर परिग्रह की वृद्धि या संरक्षण में धर्म कैसे हो सकता है? संयमी के शरीर को परिग्रह नहीं माना है, अपितु संयम-पालन का साधन माना है। उनको देने से उनके संयमी शरीर के पोषण में वह सहायक बनता है, इसलिए वह धर्म है।

प्रश्न २१. क्या साधुओं के भोजन करने में धर्म है?

उत्तर : साधुओं के भोजन करने में धर्म है, क्योंकि उनका भोजन करने का उद्देश्य

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मात्र संयम-यात्रा को निर्बाध रूप से चलाना है। आगमों में यह वर्णित है कि मुनि शुद्ध एषणीय आहार करता हुआ सातों कर्म प्रकृतियां जो दीर्घावधि की हैं, उन्हें स्वल्पावधि की कर देता है। कर्मों के तीव्र रस को मंद रस वाला बना देता है।

प्रश्न २२. अशुद्ध दान लेने वाले मुनि क्या दोष के भागीदार होते हैं?

उत्तर : जो मुनि जानता हुआ भी दोषयुक्त भोजन आदि ग्रहण करता है, तो उसके पाप का बंध होता है। ऐसा करता हुआ वह अपने मुनि-धर्म से च्युत हो जाता है। साधनाशील मुनि अपनी प्रज्ञा से भोजन आदि को बयालीस दोषों[1] से रहित जानता हुआ ग्रहण करता है, किन्तु केवलज्ञानियों की दृष्टि में वह अशुद्ध है, तदपि उन्हें पाप नहीं लगता। उस भोजन को करता हुआ मुनि आराधक पद को पाता है।

प्रश्न २३. विसर्जन किसे कहते हैं?

उत्तर : ममत्व के परित्याग को विसर्जन कहते हैं।

प्रश्न २४. विसर्जन, वितरण में कहां तक संगति है?

उत्तर : विसर्जन का अर्थ है अपनी वस्तु के स्वामित्व को छोड़ना। उस परित्यक्त या विसर्जित वस्तु की व्यवस्था करना वितरण है। विसर्जन करने वाला व्यक्ति यह सोचता है कि मैं समाज में जीता हूं तो समाज का मेरे पर उपकार है। मैं भी समाज की उन्नति के लिए कुछ करूं। इस दृष्टि से वह विसर्जित वस्तु को समाज की प्रगति के लिए नियोजन करता है, व्यवस्था करता है, उसका वितरण में समावेश हो जाता है। विसर्जन धर्म की कोटि में आता है, जबकि वितरण को धर्म नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न २५. चंदा आदि देना क्या है?

उत्तर : धन स्वयं परिग्रह है। उसका ग्रहण, दान व संरक्षण परिग्रह को पोषण देता है, इसलिये चंदा व इस सदृश प्रवृत्तियों में धर्म नहीं हो सकता।

प्रश्न २६. समाज के व्यवहार को निभाना क्या धर्म नहीं है?

उत्तर : समाज के व्यवहार को निभाना आत्म धर्म नहीं, समाज धर्म है। जिस प्रवृत्ति में ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप की अभिवृद्धि होती है, वह आत्म धर्म है। जिस प्रवृत्ति में समाज का व्यवहार निभता है, वह समाज धर्म है।

---

१. साधु की भिक्षाचर्या—एषणा समिति के दोष।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २७. कुआं व तालाब खुदवाना, कमजोर वर्ग की सहायता आदि करना बहुत उपयोगी कार्य है, फिर उनमें आत्म धर्म क्यों नहीं?

उत्तर : उपयोगिता अलग है, अध्यात्म अलग है। राष्ट्र की सुरक्षा के लिए सेना की भी अपनी उपयोगिता है, किन्तु अध्यात्म प्राणीमात्र के साथ मैत्री संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देता है। उसके लिए सेना की कोई उपादेयता नहीं है। दोनों की दिशा भिन्न है, वे एक कैसे हो सकती हैं।

२. शील धर्म

प्रश्न १. शील किसे कहते हैं?

उत्तर : शील का अर्थ है ब्रह्मचर्य (मैथुन विरमण), चर्या (आचार का पालन)। जिसमें मोक्ष के लिए ब्रह्म—सर्व प्रकार के संयम की चर्या—अनुष्ठान हो, वह ब्रह्मचर्य है। वस्ति (इंद्रिय) संयम अर्थात् वस्ति निरोध संयम है। इस अर्थ में सर्व दिव्य और औदारिक काम और रति-सुखों में मन, वचन, काया और कृत, कारित व अनुमोदन रूप से विरति ब्रह्मचर्य है।

प्रश्न २. ब्रह्मचर्य के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : ब्रह्मचर्य दो प्रकार का होता है—

१. औदारिक २. वैक्रिय

औदारिक के अन्तर्गत मनुष्यों एवं तिर्यंचों का समावेश होता है और वैक्रिय देवता, वैक्रिय लब्धिधारी मनुष्य व तिर्यंच से संबंधित है।

औदारिक शरीरी व वैक्रिय शरीरी के साथ तीन करण (करना, कराना और अनुमोदन करना) से, तीन योग (मन, वचन और काया) से अब्रह्म का सेवन न करना। दोनों औदारिक व वैक्रिय शरीरी के साथ नौ-नौ विकल्प होने से ९×२=१८ होता है।

प्रश्न ३. क्या ब्रह्मचर्य के और भेद भी होते हैं?

उत्तर : ब्रह्मचर्य के विवक्षा से २७ भेद किए गए हैं—देवता, मनुष्य व तिर्यंच के साथ तीन करण व तीन योग से अब्रह्मचर्य का सेवन न करना। इस प्रकार ३×३×३=२७ हो जाते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ४. शील (संयम साधना) के उत्कृष्ट भेद कितने हैं?

उत्तर : मुनि के शील—संयम साधना के उत्कृष्ट १८,००० भेद हो जाते हैं। चर्या के इन प्रकारों में मुनि को सतत जागरूक रहना होता है, तभी उसका चारित्र निर्मल व पवित्र रह सकता है। इन भेदों को समझाने के लिए एक गाथा उपलब्ध होती है, वह इस प्रकार है—

जे णो करंति मणसा, णिज्जिय, आहारसन्ना सोइंदिये।
पुढ़विकायारंभं, खंतिजुत्ते ते मुणी वंदे।।

यह एक गाथा है। दूसरी गाथा में 'खंति' के स्थान पर 'मुत्ति' आता है शेष श्लोक ज्यों का त्यों है। इस प्रकार १० गाथाओं में क्रमशः दस धर्मों के नाम आते हैं। फिर ग्यारहवीं गाथा में 'पुढ़वी' के बाद 'आउ' शब्द आएगा। पुढ़वी के साथ १० धर्मों का परिवर्तन हुआ था, उसी प्रकार 'आउ' के साथ भी होता है। फिर 'आउ' के बाद क्रमशः तेउ, वाउ, वणस्सई, बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिय, पंचिंदिय व अजीव—ये दस शब्द आते हैं। प्रत्येक के साथ दस धर्मों का परिवर्तन होने से (१०×१०) एक सौ गाथाएं हो जाती हैं। १०१वीं गाथा में सोइंदिय के बाद क्रमशः चक्खुरिंदिय, घाणिंदिय, रसनेंदिय, फासिंदिय शब्द आता है। एक-एक इंद्रिय के १०० होने से पांच इंद्रियों के १००×५) ५०० होते हैं। ५०१वीं गाथा में आहार सन्ना के बाद भय सन्ना, फिर मेहुण सन्ना व परिग्गह सन्ना शब्द आते हैं। एक संज्ञा के ५०० होने से चार संज्ञा के (५००×४)=२००० होते हैं। फिर मणसा के स्थान पर वयसा व फिर कायसा आते हैं। एक-एक का २००० होने से तीनों योगों के (२०००×३)=६००० होते हैं। फिर करंति की जगह कारयंति, फिर समणुजाणति शब्द आते हैं। एक-एक के ६००० होने से तीनों के (६०००×३)=१८,००० हो जाते हैं।

प्रश्न ५. शील (ब्रह्मचर्य) के उत्कृष्ट भेद कितने हैं?

उत्तर : दिगम्बर ग्रंथों में शील के १८,००० भेद मिलते हैं, वे हैं—स्त्री के चार प्रकार हैं—१. मनुष्यणी २. देवांगना ३. पशु स्त्री ४. स्त्री चित्र। इन चारों के साथ तीन करण व तीन योग से अब्रह्म का सेवन नहीं करना। इस प्रकार (४×३×३)=३६ भेद हो गए। इन छत्तीस प्रकारों का पांच इन्द्रियों से सेवन नहीं करना। इस प्रकार (३६×५)=१८० भेद हो गए।

विषय-भोग उत्पन्न होने वाले दस संस्कारों से दूर रहना। इस प्रकार (१८०×१०)=१८०० भेद हो गए। दस संस्कार ये हैं—

१. शरीर संस्कार	२. शृंगार संस्कार
३. अनंग क्रीड़ा	४. संसर्ग वांछा
५. विषय संकल्प	६. शरीर निरीक्षण

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

७. शरीर विभूषा ८. विषय पार्थदान
९. भोग स्मरण १०. मनश्चिंता

दस संभोग प्रक्रिया और परिणाम से बचना। इस प्रकार (१८००×१०)= १८,००० भेद हो गए। दस संभोग प्रक्रिया और परिणाम ये हैं—

१. काम चिंता २. अंगावलोकन
३. दीर्घ निःश्वास ४. शरीरार्ति
५. शरीर दाह ६. मंदाग्नि
७. मूर्च्छा ८. मदोन्मत्तता
९. प्राण संदेह १०. शुक्र विमोचन

प्रश्न ६. भगवान् ऋषभदेव व महावीर को छोड़कर शेष बाईस तीर्थंकरों के समय क्या ब्रह्मचर्य महाव्रत नहीं था?

उत्तर : भगवान् ऋषभदेव व महावीर ने पांच महाव्रत रूप धर्म का उपदेश दिया, उसमें ब्रह्मचर्य चौथा है। मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों ने चार याम का उपदेश दिया, उसमें ब्रह्मचर्य नाम से कोई पृथक् याम नहीं है। उनका चौथा याम बहिद्धादान है। उसमें स्त्री और परिग्रह दोनों का समावेश होता है। इस प्रकार चार याम में पांचों ही महाव्रतों का पालन करते थे। वे मुनि ऋजुप्राज्ञ[1] थे। प्रथम तीर्थंकर के शासनकाल में मुनि ऋजु जड़[2] व अंतिम तीर्थंकर के वक्र जड़[3] होते हैं। इसलिए ब्रह्मचर्य-पालन पर सम्यक् जोर देने के लिए सर्व मैथुन विरमण महाव्रत को पृथक् कर पांच महाव्रत रूप धर्म का उपदेश दिया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'ब्रह्मचर्य महाव्रत' जैन परम्परा में एक शाश्वत धर्म के रूप में स्वीकृत रहा। कभी वह पृथक् महाव्रत के रूप में हुआ और कभी बहिद्धादान याम के अन्तर्गत।

प्रश्न ७. क्या पांचों महाव्रतों का पालन युगपत् करना पड़ता है?

उत्तर : पांचों महाव्रतों को एक साथ ग्रहण करना पड़ता है, वैसे ही उनका पालन भी युगपत् रूप से करना पड़ता है। जो एक महाव्रत को भंग करता है वह सबको भंग करता है। आचार्य भिक्षु ने इस तत्त्व को निम्नोक्त उपनय से इस प्रकार समझाया है—

'एक भिखारी को पांच रोटी जितना आटा मिला। वह रोटी बनाने बैठा। उसने एक रोटी पका कर चूल्हे के पीछे रख दी। दूसरी रोटी तवे पर सिक रही थी।

१. सरल और मेधावी।
२. अत्यन्त सरल व तत्काल समझने में अक्षम।
३. अत्यन्त वक्र व हर बात में गली (अपवाद) निकालने में निपुण।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

तीसरी अंगारों पर थी। चौथी रोटी का आटा उसके हाथ में और पांचवीं रोटी का आटा कठौती में था। एक कुत्ता आया और कठौती से आटे को उठा ले गया। भिखारी उसके पीछे दौड़ा। वह ठोकर खाकर गिर पड़ा। उसके हाथ में जो एक रोटी का आटा था, वह गिरकर धूल-धूसरित हो गया। वापस आया, इतने में चूल्हे के पीछे रखी रोटी बिल्ली ले गई। तवे की रोटी तवे पर ही जल गई। अंगारों पर रखी हुई रोटी जलकर खत्म हो गई। एक रोटी का आटा जाने से बाकी चार रोटियां भी चली गईं। कदाचित् एक रोटी के नष्ट होने पर अन्य रोटियां नष्ट न भी हो, पर यह सुनिश्चित है कि एक महाव्रत के भंग होने पर सभी महाव्रत भंग हो जाते हैं।' यही तथ्य आगमों में भी वर्णित है—'ब्रह्मचर्य आदि किसी एक महाव्रत के भंग होने पर सभी महाव्रत भंग हो जाते हैं, पर्वत से गिरी हुई वस्तु की भांति टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।'

प्रश्न ८. ब्रह्मचर्य का महाव्रत व अणुव्रत स्वरूप क्या है?

उत्तर : महाव्रत में देव, मनुष्य व तिर्यंच सम्बन्धी मैथुन सेवन का तीन करण व तीन योग से प्रत्याख्यान करना होता है।

अणुव्रत में व्यक्ति स्थूल रूप में स्वदार संतोष अर्थात् परदार का त्याग करता है। इस व्रत का प्राचीन स्वरूप इस प्रकार मिलता है। इसमें श्रावक यह कहकर स्वीकार करता है—'मैं जीवनपर्यन्त देवता-देवांगना संबंधी मैथुन का द्विविध त्रिविध (दो करण तीन योग) से प्रत्याख्यान करता हूं। परपुरुष-परस्त्री और तिर्यंच-तिर्यंची सम्बन्धी मैथुन का एक करण, एक योग-शरीर से सेवन नहीं करूंगा। स्वदार संबंधी सर्व प्रकार के मैथुन की मुझे छूट है।' इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि आदर्श तो सबके लिए महाव्रत है, पर पाप-त्याग की सीमा प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार करता है, उसे अणुव्रत कहते हैं।

प्रश्न ९. ब्रह्मचर्य अणुव्रत के कितने अतिचार हैं?

उत्तर : ब्रह्मचर्य अणुव्रत के पांच अतिचार हैं। इनकी सम्यक् अवगति कर इनके आचरण से बचना बहुत अपेक्षित है। वे इस प्रकार हैं—

१. इत्वरपरिगृहीतागमन — थोड़े समय के लिए गृहीत अविवाहित स्त्री को इत्वरपरिगृहीता कहते हैं। वह वास्तव में परदार न होने पर भी अणुव्रती उसे परदार समझे और उसके साथ मैथुन सेवन न करे।

२. अपरिगृहीतागमन — किसी के द्वारा अगृहीत वेश्या आदि परदार नहीं, पर अणुव्रती उसे परदार समझे और उसके साथ मैथुन सेवन न करे।

३. अनंगक्रीड़ा — आलिंगनादि क्रीड़ा अथवा अप्राकृतिक क्रीड़ा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

को अनंगक्रीड़ा कहते हैं। अणुव्रती इन्हें भी मैथुन समझ कर उसका परिहार करे।

४. परविवाहकरण — अपनी सन्तान अथवा परिवार के व्यक्तियों के अतिरिक्त परसंतति का विवाह न करे।

५. कामभोगतीव्राभिलाषा — काम-भोग की तीव्र अभिलाषा न रखे अथवा काम-भोग का तीव्र परिणाम से सेवन न करे।

प्रश्न १०. मैथुन विरमण से क्या तात्पर्य है?

उत्तर : स्त्री और पुरुष का युगल मिथुन कहलाता है। मिथुन के भाव विशेष अथवा कर्म विशेष को मैथुन कहते हैं। इस मैथुन-अब्रह्म से विरत रहना मैथुन विरमण है। मोह के उदय होने पर राग परिणाम से स्त्री और पुरुष में जो परस्पर संस्पर्श की इच्छा होती है, वह मिथुन है। उसका कार्य अर्थात् संभोग क्रिया मैथुन है। दोनों के पारस्परिक राग परिणाम के निमित्त से होने वाली चेष्टा है।

प्रश्न ११. मैथुन सेवन करने वाले के क्या जीव हिंसा का भी पाप लगता है?

उत्तर : एक बार मैथुन सेवन से असंख्य अमनस्क मनुष्यों की हिंसा होती है। इस तरह वह पंचेन्द्रिय वध के पाप का भागी बनता है।

प्रश्न १२. एक बार मैथुन सेवन से गर्भ में कितने जीव उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर : एक बार मैथुन सेवन से एक, दो, तीन से लेकर नौ लाख समनस्क जीव गर्भ में उत्पन्न हो सकते हैं। यह तथ्य तो अब विज्ञान द्वारा भी परीक्षित हो चुका है। यह सही है कि ये गर्भगत जीव पूरा विकास नहीं कर पाते, अधिकांश तत्काल मर जाते हैं।

प्रश्न १३. मैथुन सेवन करने वाले पुरुष के किस प्रकार का असंयम (हिंसा) होता है?

उत्तर : एक पुरुष रुई की नली में या बूर की नली में तपी हुई शलाका डाल कर उसे विध्वंस करता है। मैथुन सेवन करने वाले का असंयम (हिंसा) भी ऐसा ही होता है।

प्रश्न १४. क्या पूरे जीव जगत् को मैथुन सेवन का पाप लगता है?

उत्तर : नारक, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, अमनस्क मनुष्य व तिर्यंच पंचेन्द्रिय को मैथुन सेवन का पाप नहीं लगता, क्योंकि इनमें नपुंसक वेद होता है। शेष जीवों में मैथुन सेवन की प्रवृत्ति होने से पाप लग सकता है।

प्रश्न १५. क्या समलैंगिक मैथुन सेवन से भी ब्रह्मचर्य का विनाश होता है?

उत्तर : समलैंगिक मैथुन सेवन अप्राकृतिक मैथुन की संज्ञा में है। इससे भी शील का

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

विनाश होता है। इस अप्राकृतिक मैथुन से विरत रहने वाले व्यक्ति को न केवल आध्यात्मिक लाभ मिलता है, अपितु 'एड्स' जैसे जानलेवा रोगों से सहज ही बचा जा सकता है।

प्रश्न १६. क्या बिना किसी संभोग के गर्भ रह सकता है?

उत्तर : शिशु की उत्पत्ति के लिए पुरुष व स्त्री दोनों का संयोग अपेक्षित रहता है। केवल पुरुष के 'वीर्य' या स्त्री के 'रज' से शिशु की उत्पत्ति नहीं होती, अपितु दोनों के सम्मिश्रण से होती है। पुरुष के वीर्य व स्त्री के रज का बिना संयोग के भी यदि गर्भ में सम्मिश्रण हो जाता है तो उससे भी शिशु की उत्पत्ति हो सकती है, जैसे—परखनली शिशु। बिना किसी संयोग के गर्भ तो नहीं रहता, पर गर्भ जैसा मांसपिण्ड गर्भाशय में बढ़ सकता है। गर्भ की भांति इसमें भी 'मासिक' रुक जाता है, किन्तु उसमें पंचेन्द्रिय जीव उत्पन्न नहीं होता।

प्रश्न १७. ब्रह्मचर्य का पालन कौन सा भाव, कौन सी आत्मा?

उत्तर : केवल ब्रह्मचर्य का पालन भाव दो—क्षायोपशमिक, पारिणामिक; आत्मा-योग त्यागयुक्त ब्रह्मचर्य का पालन भाव-चार-उदय को छोड़कर आत्मा एक-योग व चारित्र (देश चारित्र)

प्रश्न १८. ब्रह्मचर्य का पालन सावद्य है या निरवद्य?

उत्तर : ब्रह्मचर्य का पालन निरवद्य है, भगवान् की आज्ञा में है। चाहे उसका पालन मिथ्यात्वी ही क्यों न करता हो।

प्रश्न १९. ब्रह्मचर्य को तप क्यों कहा है?

उत्तर : जिस क्रिया से आत्मा तपे, कष्ट की अनुभूति हो, दूसरों को संक्लेश न हो, ऐसी क्रिया को तप कहा जाता है। ब्रह्मचर्य के पालन में भी वैसी ही अनुभूति होती है, भीतरी विजातीय तत्त्वों से जूझना पड़ता है अतः ब्रह्मचर्य को घोर तप कहा है।

प्रश्न २०. जैनागमों में ब्रह्मचर्य की महिमा किस रूप में है?

उत्तर : जैनागमों में प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य की महिमा का हृदयग्राही वर्णन है। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—'ब्रह्मचर्य व्रत सदा प्रशस्त, सौम्य, शुभ और शिव है। वह आत्मा की महान् निर्मलता है। वह प्राणी को विश्वसनीय बनाता है। उससे किसी को भय नहीं होता।'

'यह भूसी रहित धान की तरह सारवस्तु है। यह खेदरहित है। यह जीव को कर्म से लिप्त नहीं होने देता। चित्त की स्थिरता का हेतु है। तप-संयम का मूल तत्त्व है।' इसी सूत्र में बत्तीस उपमाएं देकर ब्रह्मचर्य को विनय, शील, तप आदि सब गुण समूह में प्रधान बताया है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २१. ब्रह्मचारी मर कर कहां जाता है?

उत्तर : जो व्यक्ति धर्म की विविध प्रवृत्तियों का आचरण नहीं करता, केवल ब्रह्मचर्य का पालन करता है। उसके लिए भी कहा गया है कि वह देव ही बनता है।

प्रश्न २२. कोई व्यक्ति परिस्थितिवश या अनिच्छापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करता है। क्या ऐसे व्यक्ति को भी कुछ लाभ होता है?

उत्तर : परिस्थितिवश या अनिच्छापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों के भी अकाम निर्जरा होती है और उनके भी १४,००० वर्ष स्थिति वाले देव होने का उल्लेख है।

प्रश्न २३. कई धार्मिक ग्रंथों में सन्तानोत्पत्ति के लिए मैथुन सेवन को उचित माना है। इसमें जैन दृष्टिकोण क्या है?

उत्तर : कई धार्मिक ग्रंथों व मनस्वी विचारकों ने सन्तानोत्पत्ति के लिए मैथुन सेवन को उचित माना है। महात्मा गांधी ने सन्तानोत्पत्ति या आध्यात्मिक प्रेम के होते स्वस्त्री से किए जाने वाले मैथुन सेवन को उचित ठहराया है। उन्होंने इसे पाप न मानकर ईश्वर की आज्ञा का पालन बताया है। महात्मा गांधी ने केवल कामाग्नि की तृप्ति के लिए किए जाने वाले संभोग को त्याज्य बताया है।

जैन दृष्टि में विषयतृप्ति और सन्तानोत्पत्ति, दोनों ही हेतु सावद्य हैं। संभोग क्रिया में फिर वह भले ही किसी भी हेतु से हो, इन्द्रियों के विषयों का सेवन होता ही है। यह संभव है कि कोई संभोग तीव्र परिणामों से करे और कोई हल्के परिणामों से। जो तीव्र परिणामों से प्रवृत्त होता है, वह गाढ़ बंधन करता है और जो हल्के परिणामों से प्रवृत्त होता है, उसका बंधन हल्का होता है।

सन्तानोत्पत्ति में स्वधर्म पालन जैसी कोई बात नहीं। अपने पीछे अपना वारिस छोड़ जाने की भावना में मोह और अहंकार ही है। अनासक्तिपूर्वक सन्तानोत्पादन करने वाले ब्रह्मचारी ही हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह भी भोगी है। यदि भावों में तीव्रता नहीं है, तो उसका बंधन कठोर नहीं होगा, इतनी सी बात है। हेतु से दोषपूर्ण क्रिया निर्दोष नहीं हो सकती। अशुद्ध साधन प्रयोजनवश शुद्ध नहीं हो सकता।

प्रश्न २४. ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए मुनि को कौन से उपाय सुझाए गए हैं?

उत्तर : ब्रह्मचर्य की रक्षा के उपायों को आगमों में गुप्तियां अथवा समाधि-स्थान कहा है। इन्हें साधारणतः ब्रह्मचर्य की बाड़ भी कहा जाता है। इन उपायों की संख्या नौ अथवा दस दोनों ही प्राप्त है। इनकी नौ संख्या इस प्रकार हैं—

१. विविक्त शयनासन — निर्ग्रंथ स्त्री, पशु और नपुंसक से संयुक्त उपाश्रय का सेवन न करे।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२. स्त्री कथा-वर्जन — स्त्री कथा न कहे।
३. एक आसन-वर्जन — स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे।
४. इंद्रिय दर्शन-परिहार — स्त्रियों के मनोरम और मनोहर अंग-प्रत्यंगों को न देखे।
५. शब्द श्रवण-परिहार — स्त्रियों के कूजन, गीत, हास्य आदि के शब्द न सुने।
६. पूर्व-क्रीड़ा-स्मृति-वर्जन — पूर्व क्रीड़ाओं का स्मरण न करे।
७. प्रणीत-भोजन-वर्जन — सरस भोजन न करे।
८. अति भोजन-वर्जन — अति मात्रा में न खाए व न पीए।
९. विभूषा-वर्जन — विभूषा न करे।

ब्रह्मचर्य की जो पांच भावनाओं – अनुप्रेक्षाओं का उल्लेख आता है, उनका इन नौ गुप्तियों में समावेश हो जाता है।

प्रश्न २५. बाड़ व कोट किसे कहते हैं?

उत्तर : ब्रह्मचर्य की जो गुप्तियां अथवा समाधि-स्थान बताये हैं वे ही बाड़ हैं। जो इसके दस प्रकार मिलते हैं, उनमें अंतिम हैं पांच काम-गुणों (शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श) का परिहार। गांव की सीमा पर अवस्थित बिना बाड़ का खेत पशु व झगड़े आदि से सुरक्षित नहीं रह सकता। वह तो तभी सुरक्षित रहेगा, जबकि खेत के चारों ओर बाड़ लगा दी जाए। जहां ब्रह्मचारी विचरण करता है, वहां स्थान-स्थान पर स्त्रियां हैं। इसी कारण शील रूपी खेत की सुरक्षा के लिए नौ बाड़ का कथन किया। नौ बाड़ व दसवें कोट के भीतर ब्रह्मचर्य सुरक्षित रहता है।

प्रश्न २६. आहार का ब्रह्मचर्य के साथ क्या सम्बन्ध है?

उत्तर : आहार का ब्रह्मचर्य के साथ गहरा सम्बन्ध है। भगवान् महावीर ने कहा—'ब्रह्मचारी निरस-निःसत्त्व आहार करे, कम खाए। ब्रह्मचारी केवल संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए ही सादा और परिमित आहार करे, स्वाद के लिए नहीं।' आचार्य भिक्षु ने ब्रह्मचारी के लिए ऊनोदरी तप को उत्तम तप बताया। उन्होंने कहा—'जिसकी जीभ वश में नहीं, वह सरस आहार की चाह करता है, परिणामस्वरूप व्रत भंग कर सारभूत ब्रह्मचर्य व्रत को खो देता है।'

महात्मा गांधी ने मिताहार व स्वाद विजय पर बल दिया है। उन्होंने कहा—'जो अपनी जिह्वा को कब्जे में रख सकता है, उसके लिए ब्रह्मचर्य सुगम हो जाता है। जिसने जीभ को नहीं जीता, वह विषय-वासना को नहीं जीत सकता।...ब्रह्मचर्य से अस्वाद व्रत का घनिष्ट सम्बन्ध है।...जो मनुष्य अतिभोजन करने वाला है, जो आहार में कुछ विवेक या मर्यादा ही नहीं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

रखता, वह विकारों का गुलाम है।' इनसे यह स्पष्ट है कि आहार का ब्रह्मचर्य के साथ गहरा सम्बन्ध है, इसलिए ब्रह्मचारी को सात्त्विक व अल्पाहारी होना अपेक्षित है। ब्रह्मचारी के लिए तामसिक, तली हुई व मिर्च मसाले से रहित भोजन को उपयोगी माना गया है।

३. तप धर्म

प्रश्न १. तप किसे कहते हैं?

उत्तर : जिस क्रिया से विजातीय तत्त्व झड़ जाये तथा आत्मा उज्ज्वल होती हो, उसे तप कहते हैं। तप भी निर्जरा है।

प्रश्न २. तप का क्या महत्त्व है?

उत्तर : तप करने वाला व्यक्ति पूर्व संचित कर्मों को क्षीण कर विशुद्धि को प्राप्त होता है। इस विशुद्धि से वह वीतराग, सर्वज्ञ व मुक्तावस्था को प्राप्त होता है।

प्रश्न ३. क्या तप और निर्जरा एक है?

उत्तर : निर्जरा नौ तत्त्वों में सातवां तत्त्व है। तप मोक्ष के क्रियात्मक चार मार्गों में तीसरा मार्ग है। फलित में दोनों एक हैं।

प्रश्न ४. तप का उद्देश्य क्या है?

उत्तर : केवल आत्मशुद्धि के लिए तप करना चाहिए। तपस्या का उद्देश्य ऐहिक या पारलौकिक भौतिक सुख-समृद्धि व प्रतिष्ठा-प्राप्ति नहीं होना चाहिए। जो प्रतिफल की कामना किए बिना तप करता है, उसका वर्तमान भी पवित्र होता है और परलोक भी। इस तरह वह दोनों लोकों की आराधना कर लेता है।

प्रश्न ५. तप (निर्जरा) के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : तप के दो प्रकार हैं—

१. बाह्य २. आभ्यन्तर

बाह्य तप के छह प्रकार हैं—

१. अनशन २. ऊनोदरी
३. भिक्षाचरी ४. रस-परित्याग
५. कायक्लेश ६. प्रतिसंलीनता

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आभ्यन्तर तप के छह प्रकार हैं—

१. प्रायश्चित्त	२. विनय
३. वैयावृत्त्य	४. स्वाध्याय
५. ध्यान	६. व्युत्सर्ग

प्रश्न ६. अनशन किसे कहते हैं? उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : अशन त्याग को अनशन कहते हैं। उसके दो प्रकार हैं—

१. इत्वरिक — अल्पकालिक
२. यावत् कथिक — यावज्जीवन

इत्वरिक तप कम से कम एक दिन, अधिक से अधिक छह मास तक का होता है।

प्रश्न ७. भगवान् ऋषभ का बारहमासी तप क्या इत्वरिक अनशन में नहीं है?

उत्तर : यहां छह मासी तप का विवेचन भगवान् महावीर के शासनकाल की तपस्या के अनुसार कहा गया है। इससे पूर्व तीर्थंकरों के शासनकाल में अधिक तपस्या होती रही है। वह इत्वरिक अनशन के अन्तर्गत ही आती है।

प्रश्न ८. क्या दस प्रत्याख्यान अनशन के अन्तर्गत हैं?

उत्तर : दस प्रत्याख्यान के नाम इस प्रकार हैं—

१. नवकारसी	२. पोरसी
३. पुरिमार्ध	४. एकासन
५. एकस्थान	६. निर्विगय
७. आयंबिल	८. उपवास
९. दिवस चरिम	१०. अभिग्रह

इनमें निर्विगय और आयंबिल रस परित्याग, उपवास अनशन के अंतर्गत हैं जबकि अवशिष्ट सात ऊनोदरी के अंतर्गत आते हैं।

प्रश्न ९. ऊनोदरी किसे कहते हैं, उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : भोजन की मात्रा में कमी करना ऊनोदरी है। जिसकी जितनी खुराक है, उसमें से एक ग्रास, चार ग्रास आदि कम करने को ऊनोदरी कहते हैं, उसके पांच प्रकार हैं—

१. द्रव्य ऊनोदरी — जिसकी जितनी भोजन की मात्रा है, उसमें कम करना।
२. क्षेत्र ऊनोदरी — नगर, मौहल्ला आदि में पूर्व निश्चय के अनुसार निर्धारित क्षेत्र में भिक्षा के लिए जाना, अन्यथा नहीं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३. काल ऊनोदरी — दिवस के चार प्रहरों में नियत समय पर भिक्षा के लिए जाना व खाना, अन्यथा नहीं।

४. भाव ऊनोदरी — अमुक प्रकार के वर्ण या भाव से युक्त दाता से भिक्षा ग्रहण करना, अन्यथा नहीं।

५. पर्यव ऊनोदरी — द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में जो पर्याय (भाव) कहे हैं, उन सबके द्वारा ऊनोदरी करना।

प्रश्न १०. भिक्षाचरी किसे कहते हैं, उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : अभिग्रह युक्त खाद्य संयम करना तथा भिक्षाचरी—गोचरी के नियमों का पालन करना भिक्षाचरी तप है। इसका दूसरा नाम वृत्तिसंक्षेप या वृत्ति परिसंख्यान है। इसके छह, सात, आठ व तीस प्रकार भी मिलते हैं। आठ प्रकार के गोचराग्रों सात एषणाओं तथा अन्य विविध प्रकार के अभिग्रहों के द्वारा भिक्षावृत्ति को संक्षिप्त किया जाता है।

प्रश्न ११. रस परित्याग किसे कहते हैं, उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : दूध-दही आदि रसीले पदार्थों का वर्जन रस परित्याग है। इसके नौ प्रकार हैं—

१. निर्विकृति — विगय रहित आहार।

२. प्रणीत रस परित्याग — गरिष्ठ भोजन का परिहार।

३. आचाम्ल — अम्ल रस मिश्रित भात आदि का आहार।

४. आयाम सिक्थ भोजन — ओसामण से मिश्रित अन्न का आहार।

५. अरस आहार — हींग आदि से असंस्कृत आहार।

६. विरस आहार — पुराने धान्य का आहार।

७. अन्त्य आहार — तुच्छ धान्य का आहार।

८. प्रान्त्य आहार — ठंडा आहार।

९. रूक्ष आहार — चिकनाई रहित आहार।

इस तप का प्रयोजन 'स्वाद-विजय' है। इसलिए रस परित्याग करने वाला विकृति (विगय), सरस व स्वादिष्ट भोजन नहीं खाता।

प्रश्न १२. विकृतियां कितनी हैं?

उत्तर : विकृतियां नौ हैं—

१. दूध	२. दही	३. घी
४. तेल	५. गुड़	६. नवनीत
७. मधु	८. मद्य	९. मांस

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इनमें अंतिम चार को महाविकृतियां माना गया है। परम्परा से मिठाई आदि को कड़ाही विगय माना है।

प्रश्न १३. कायक्लेश किसे कहते हैं, उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : आसन आदि निरवद्य क्रिया से शरीर को साधना कायक्लेश है। इसके दस प्रकार हैं—

१. स्थान–कायोत्सर्ग	२. उकडू आसन
३. प्रतिमा आसन	४. वीरासन
५. निषद्या	६. आतापना
७. वस्त्र त्याग	८. अकण्डूयन–खुजली न करना।
९. अनिष्ठीवन–थूकने का त्याग	१०. सर्व गात्र परिकर्म विभूषा-वर्जन

इसके ७ प्रकार भी मिलते हैं।

प्रश्न १४. कायक्लेश व परीषह में क्या अन्तर है?

उत्तर : कायक्लेश स्वयं इच्छानुसार किया जाता है और परीषह सहज समागत कष्ट होता है। कायक्लेश अनासक्तिप्रधान साधना है।

प्रश्न १५. प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं, उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : इन्द्रिय, मन आदि को अन्तर्मुखी बनाना प्रतिसंलीनता है। उसके चार प्रकार हैं—

१. इन्द्रिय प्रतिसंलीनता	२. कषाय प्रतिसंलीनता
३. योग प्रतिसंलीनता	४. विविक्त-शयनासन

एकान्त व स्त्री, पशु आदि से रहित शयन व आसन का उपयोग करना विविक्त शयनासन तप है।

प्रश्न १६. प्रायश्चित्त किसे कहते हैं, उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : दोष विशुद्धि के लिए जो प्रयत्न किया जाता है, उसे प्रायश्चित्त कहते हैं। उसके दस प्रकार हैं—

१. आलोचना	—	गुरु के समक्ष अपने दोषों को निवेदित करना।
२. प्रतिक्रमण	—	कृत पाप से निवृत्त होने के लिए 'मिच्छामि दुक्कड़ं' कहना।
३. तदुभय	—	आलोचना व प्रतिक्रमण दोनों करना।
४. विवेक	—	समागत अप्रासुक आहार आदि का उत्सर्ग करना।
५. व्युत्सर्ग	—	चतुर्विंशतिस्तव के साथ कायोत्सर्ग करना।
६. तप	—	अनशन, ऊनोदरी आदि करना।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

७. छेद — संयम (चारित्र) को कम करना।
८. मूल — नई दीक्षा लेना।
९. अनवस्थापना — तपपूर्वक नई दीक्षा लेना।
१०. पारांचिक — अवहेलनापूर्वक नई दीक्षा लेना।

प्रश्न १७. विनय किसे कहते हैं, उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : कर्मों का अपनयन और बड़ों का बहुमान विनय है। किसी की अवहेलना-आशातना न करना भी विनय है। उसके सात प्रकार हैं—

१. ज्ञान २. दर्शन ३. चारित्र
४. मन ५. वचन ६. काय (शरीर)
७. लोकोपचार—अनुशासन व शिष्टाचार का पालन।

प्रथम तीन का बहुमान करना अगले तीन की कुशल-प्रवृत्ति करना।

प्रश्न १८. वैयावृत्त्य किसे कहते हैं, उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : सहयोग की भावना से निरवद्य सेवा कार्य में जुड़ना वैयावृत्त्य है। उसके दस प्रकार हैं—

१. आचार्य का वैयावृत्त्य २. उपाध्याय का वैयावृत्त्य
३. स्थविर का वैयावृत्त्य ४. तपस्वी का वैयावृत्त्य
५. ग्लान (रुग्ण) का वैयावृत्त्य ६. शैक्ष (नवदीक्षित) का वैयावृत्त्य
७. कुल (मुनि समूह[1]) का वैयावृत्त्य ८. गण (कुल समूह) का वैयावृत्त्य
९. संघ (गण समूह) का वैयावृत्त्य १०. साधर्मिक का वैयावृत्त्य

प्रश्न १९. स्वाध्याय किसे कहते हैं, उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : अध्यात्मशास्त्र के अध्ययन को स्वाध्याय कहते हैं। उसके पांच प्रकार हैं—

१. वाचना (अध्यापन) २. पृच्छना (पूछना)
३. परावर्तन (कंठस्थ पाठ को चितारना) ४. अनुप्रेक्षा (अर्थ चिंतन)
५. धर्मकथा।

प्रश्न २०. ध्यान किसे कहते हैं, उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : योग निरोध को ध्यान कहा जाता है, इस परिभाषा के आधार पर ध्यान के तीन प्रकार होते हैं—

१. मानसिक २. वाचिक ३. कायिक

१. एक आचार्य के शिष्य।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

एकाग्र चिंतन को ध्यान कहा जाता है। इस परिभाषा के आधार पर ध्यान के चार प्रकार होते हैं।

१. आर्त्त[1] २. रौद्र[2] ३. धर्म्य ४. शुक्ल

इनमें प्रथम दो अप्रशस्त, अंतिम दो प्रशस्त हैं।

प्रश्न २१. व्युत्सर्ग किसे कहते हैं, उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : शरीर आदि की क्रियाओं को विसर्जित करना व्युत्सर्ग है। उसके दो प्रकार हैं—

१. द्रव्य व्युत्सर्ग २. भाव व्युत्सर्ग

द्रव्य व्युत्सर्ग के चार प्रकार हैं—

१. शरीर व्युत्सर्ग २. गण व्युत्सर्ग

३. उपधि व्युत्सर्ग ४. भक्तपान व्युत्सर्ग

भाव व्युत्सर्ग के तीन प्रकार हैं—

१. कषाय व्युत्सर्ग — क्रोध आदि कषायों का विसर्जन

२. संसार व्युत्सर्ग — परिभ्रमण का विसर्जन।

३. कर्म व्युत्सर्ग — कर्म पुद्गलों का विसर्जन।

काय-शरीर का व्युत्सर्ग करना कायोत्सर्ग है। कायोत्सर्ग खड़े, बैठे और लेटे— इन तीनों अवस्थाओं में किया जा सकता है।

प्रश्न २२. क्या जैन दर्शन पंचाग्नि तप को मान्यता देता है?

उत्तर : परिव्राजक, संन्यासी पंचाग्नि तप को तपा करते हैं। यह तप हिंसा प्रधान है। हिंसाजन्य इस तप को अहिंसानिष्ठ जैन दर्शन मान्यता प्रदान नहीं कर सकता।

प्रश्न २३. पंचाग्नि तप करने वाले को तीव्र कष्टानुभूति होती है, फिर उसमें निर्जरा (धर्म) क्यों नहीं होती?

उत्तर : केवल कष्ट सहना जैन साधना का लक्ष्य नहीं है। इसका लक्ष्य है वीतरागता इसके लिए की जाने वाली क्रिया में यदि कष्ट होता है, तो उसे सहना धर्म है। हिंसात्मक प्रवृत्ति से जो कष्टानुभूति होती है, उसमें धर्म व पुण्य कदापि नहीं होता।

---

१. रोगादि कष्टों में व्याकुल होना तथा वैषयिक सुखपूर्ति के लिए संकल्प करना।

२. चित्त की क्रूरता व कठोरता रूप ध्यान।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २४. अज्ञान तप किसे कहते हैं?

उत्तर : मिथ्यात्वी का तप अज्ञान तप कहलाता है। इसको बाल तप भी कहा जाता है।

प्रश्न २५. मिथ्यात्वी व सम्यक्त्वी की तपस्या में क्या अन्तर है?

उत्तर : मिथ्यात्वी व सम्यक्त्वी के तपस्या की निष्पत्ति में अन्तर रहता है। मिथ्यात्वी के निर्जरा सम्यक्त्वी से कम होती है। मिथ्यात्वी अवस्था में तामली तापस ने साठ हजार वर्ष तक बेले-बेले तप किया था। कहा जाता है कि यदि इतनी तपस्या सम्यक्त्वयुक्त करे तो सात जीव कर्ममुक्त हो सकते हैं।

प्रश्न २६. क्या मिथ्यात्वी की तपस्या संसार वृद्धि का कारण है?

उत्तर : संसार वृद्धि मोह कर्म के उदय से होती है और तपस्या मोह कर्म के क्षयोपशम से होती है। यह काया का शुभयोग है। क्षयोपशम से की जाने वाली तपस्या संसार वृद्धि का हेतु कैसे हो सकती है? यह तो आत्म उज्ज्वलता का कारण बनती है।

प्रश्न २७. तपस्या कितने भाव कितनी आत्मा?

उत्तर : तपस्या भाव-चार-उदय को छोड़कर आत्मा-एक-योग।

प्रश्न २८. क्या तप के कई प्रकार हैं?

उत्तर : तपस्या करने के १०८ प्रकार उपलब्ध होते हैं, जैसे—रोहिणी तप, कनकावली तप, भद्र महाभद्र, प्रतिमा आदि। इनमें तप करने की विविध पद्धतियां हैं। रोहिणी तप, सोलिया तप, चूड़ा तप मध्यवर्ती युग में यतिजनों द्वारा प्रतिपादित व विकसित है। पचरंगी, सतरंगी नाम से तपस्या का क्रम तेरापंथ धर्मसंघ में ही अधिक प्रचलित हैं। प्राप्त इतिहास के अनुसार सं. १९२५ में जयाचार्य ने जोधपुर में पचरंगी, सतरंगी नामक तपस्या का शुभारंभ किया था। जय सुजश के अनुसार लाडनूं में बहिनों में एक साथ १३ पचरंगियां हुई थीं।

प्रश्न २९. क्या भौतिक अभिसिद्धि के लिए भी तपस्या की जा सकती है?

उत्तर : भौतिक अभिसिद्धि के लिए तपस्या हो सकती है। दस रुपये की वस्तु सौ रुपयों में क्यों नहीं मिलती, किन्तु वह वस्तु खरीदने वाला मूर्ख कहलाता है। भौतिक उपलब्धि में तप व जप की प्रधानता होती है, किन्तु दस रुपये मूल्य की वस्तु के लिए वह सौ रुपये देने की बात होगी। राजा रावण के बहुरूपिणी विद्या के लिए आठ दिनों की तपस्या करने का उल्लेख मिलता है। वासुदेव श्रीकृष्ण, महामंत्री अभयकुमार तथा चक्रवर्ती आदि ने भी देव-सहयोग के लिए तेले किये थे।

प्रश्न ३०. तपस्वियों का सम्मान क्या उनकी उज्ज्वलता को मंद नहीं करता?

उत्तर : तपस्वियों का अभिनंदन तप का अभिनंदन है। इससे लोगों में तप का प्रभाव

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बढ़ता है। साथ ही अभिनंदन तपस्वियों के लिए एक खतरा भी है। तपस्या के साथ लेन-देन करना एक प्रकार से उसे बेचना है। फल की आकांक्षा से की जाने वाली तपस्या वास्तविक तपस्या नहीं है।

४. भाव धर्म

प्रश्न १. भाव किसे कहते हैं?

उत्तर : कर्मों के संयोग या वियोग से होने वाली आत्मा की अवस्था को भाव कहते हैं।

प्रश्न २. क्या परिणाम विशेष को भाव कहते हैं?

उत्तर : परिणाम विशेष को भी भाव कहते हैं। यह मनोयोग से संबंधित परिणाम है। अध्यवसाय, लेश्या व योग के समन्वित रूप को ही भाव कहते हैं। व्यवहार में मोक्ष के चार मार्गों में भाव का भी उल्लेख है। वह यही परिणाम विशेष भाव है।

प्रश्न ३. क्या भाव शुभ, अशुभ दोनों है?

उत्तर : भाव शुभ-अशुभ दोनों होते हैं। शुभ भावों में संलग्न जीव मोक्ष का उत्कृष्ट सुख पा सकता है, अशुभ भावों में लगा जीव सातवीं नरक तक का उत्कृष्ट दुःख भी पा लेता है। जैन व्याख्या ग्रंथों में प्रसन्नचंद राजर्षि का उल्लेख मिलता है। उनके जीवन में ऐसा प्रसंग बना कि अन्तर्मुहूर्त्त समय में जब अशुभ भाव व अध्यवसाय की तीव्रता बढ़ी, तो उन्होंने सातवीं नरक तक के योग्य कर्म पुद्गलों के दलिक बांध लिये। जब अशुभ से शुभ की ओर तीव्रता से प्रयाण किया तो सातवीं नरक तक के उन कर्म दलिकों को तोड़ते हुए उसी अन्तर्मुहूर्त्त समय में सर्वज्ञ बन गए। सचमुच भावों का खेल अजीब है।

प्रश्न ४. भाव शून्य क्रिया कहां होती है?

उत्तर : अमनस्क जीवों की क्रिया भाव शून्य होती है। उन जीवों में अध्यवसाय तो होता है, किन्तु मनोयोग न होने से जो क्रिया होती है, उसमें भावों का अभाव रहता है। ऐसी क्रिया में लाभ-हानि दोनों न्यूनतम होती है।

प्रश्न ५. क्या भावयुक्त व भावशून्य की गई क्रिया के प्रायश्चित्त में अंतर रहता है?

उत्तर : भावयुक्त व भावशून्य की गई असत् क्रिया के प्रायश्चित्त में बहुत अंतर रहता है। तीव्र परिणाम में कोई असत् क्रिया घटित हुई हो, तो उसका उत्कृष्ट प्रायश्चित्त नई दीक्षा ग्रहण करने तक आ सकता है। मंद परिणाम में कोई असत् क्रिया हो जाती है, तो उसका प्रायश्चित्त हल्का होता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न ६. भावों की उत्कृष्ट निर्मलता और मलिनता के लिए क्या मजबूत संहनन अपेक्षित रहता है?

उत्तर : भावों की उत्कृष्ट निर्मलता के लिए सर्वाधिक मजबूत वज्रऋषभनाराच संहनन की अपेक्षा रहती है। इसी संहनन वाला मोक्षगामी हो सकता है। उत्कृष्ट मलिनता अर्थात् सातवीं नरक तक ले जाने में भी यही संहनन उत्तरदायी है।

प्रश्न ७. क्या श्रेणी आरोहण के समय भावों की ही प्रधानता रहती है?

उत्तर : श्रेणी आरोहण के समय भावों की ही प्रधानता रहती है, वचन और काया की क्रिया भी साथ में हो सकती है।

प्रश्न ८. क्या चक्रवर्ती भरत को अपने महल में केवल ज्ञान की उपलब्धि भावों से हुई?

उत्तर : चक्रवर्ती भरत ने अपने महल में अनित्य अनुप्रेक्षा की, जिससे भावों में चारित्र आया और श्रेणी आरोहण करते हुए केवल ज्ञान की भूमिका तक पहुंच गए। उनके केवल प्राप्ति में भावों की ही मुख्यता रही। माता मरुदेवी की भी मुक्ति भाव-निर्मलता से हुई। वह प्रथम गुणस्थान से सातवें, फिर श्रेणी चढ़ते हुए तेरहवें गुणस्थान में सर्वज्ञ बनीं, तत्क्षण योग निरुद्ध कर सिद्ध, बुद्ध व मुक्त बनीं।

प्रश्न ९. मोक्ष-मार्ग में भाव को अतिरिक्त महत्त्व क्यों दिया गया है?

उत्तर : मोक्ष मार्ग की आराधना में भाव (शुभ) का बहुत महत्त्व है। किसी भी धार्मिक क्रिया की गुणवत्ता तभी बढ़ती है जब उसके साथ भाव जुड़ा होता है। भाव शून्य क्रिया द्रव्य क्रिया होती है, अतः वह अल्प फलदायिनी ही बनकर रह जाती है। भाव से जुड़ी क्रिया असाधारण फल देने वाली होती है।

प्रश्न १०. भावना और अनुप्रेक्षा में क्या अन्तर है?

उत्तर : मन की मूर्च्छा को तोड़ने वाले विषयों का अनुचिंतन करना अनुप्रेक्षा है। जिस विषय का अनुचिंतन बार-बार किया जाता है या जिस प्रवृत्ति का बार-बार अभ्यास किया जाता है, उससे मन प्रभावित हो जाता है, इसलिए उस चिंतन या अभ्यास को भावना कहा जाता है।

प्रश्न ११. भावना के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : भावना के बारह प्रकार हैं—

१. अनित्य	२. अशरण	३. भव
४. एकत्व	५. अन्यत्व	६. अशौच
७. आश्रव	८. संवर	९. निर्जरा
१०. धर्म	११. लोक-संस्थान	१२. बोधि दुर्लभता

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भावना के चार प्रकार भी मिलते हैं—

१. मैत्री २. प्रमोद ३. करुणा ४. मध्यस्थता

प्रश्न १२. आत्मा के अवस्थारूप भाव के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : भाव के पांच प्रकार हैं—

१. औदयिक — कर्मों के उदय से होने वाली आत्मा की अवस्था।
२. औपशमिक — मोहकर्म के उपशम से होने वाली आत्मा की अवस्था।
३. क्षायिक — कर्मों के क्षय से होने वाली आत्मा की अवस्था।
४. क्षायोपशमिक — घातिकर्मों के क्षयोपशम से होने वाली आत्मा की अवस्था।
५. पारिणामिक — परिणमन से होने वाली आत्मा की अवस्था।

प्रश्न १३. पांच ही भावों का कितने कर्मों से संबंध है?

उत्तर : उदय, क्षय व परिणमन आठ ही कर्मों का होता है। उपशम केवल मोहकर्म का होता है। क्षयोपशम चार घातिकर्मों—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अंतराय का होता है।

प्रश्न १४. पांच भाव जीव हैं या अजीव?

उत्तर : पांच भाव जीव, अजीव दोनों हैं। आत्मा की अवस्था विशेष का नाम ही भाव है, अतः जीव है। जिन-जिन कर्म प्रकृतियों के उदय, उपशम आदि से आत्मा की अवस्था परिवर्तित होती रहती है, उन-उन कर्म वर्गणाओं की दृष्टि से पांचों भाव अजीव भी हैं। जैसे—ज्ञानावरणीय कर्म का उदय अजीव व उसका उदय निष्पन्न जीव हैं। उदय निष्पन्न के दो प्रकार हैं—१. जीवोदय निष्पन्न[1] २. अजीवोदय निष्पन्न।

प्रश्न १५. जीव के उदय निष्पन्न के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : जीव के उदय निष्पन्न के तैंतीस प्रकार हैं—

चार गति, छह काय, छह लेश्या, चार कषाय, तीन वेद, मिथ्यात्व, अविरति, अमनस्कता, अज्ञानित्व, आहारता, सयोगिता, संसारता—असिद्धता, अकेवलित्व—छद्मस्थता।

अजीवोदय निष्पन्न के तीस प्रकार हैं—पांच शरीर, पांच शरीर के प्रयोग में परिणत पुद्गल द्रव्य, पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श। ये वैसे जीवाश्रित होते हैं।

---

१. निष्पत्ति।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न १६. औपशमिक भाव के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : औपशमिक भाव के ग्यारह प्रकार हैं—

१. उपशांतक्रोध
२. उपशांतमान
३. उपशांतमाया
४. उपशांतलोभ
५. उपशांतराग
६. उपशांतद्वेष
७. उपशांतदर्शनमोह
८. उपशांतचारित्रमोह
९. औपशमिक सम्यक्त्व
१०. औपशमिक चारित्र
११. उपशांत कषाय—छद्मस्थ वीतराग

औपशमिक के संक्षिप्त प्रकार दो भी मिलते हैं—

१. औपशमिक सम्यक्त्व
२. औपशमिक चारित्र

प्रश्न १७. क्षायिक भाव के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : क्षायिक भाव के तेरह प्रकार हैं—

१. केवल ज्ञान
२. केवल दर्शन
३. आत्मिक सुख
४. क्षायिक सम्यक्त्व
५. क्षायिक चारित्र
६. अटल अवगाहन
७. अमूर्ति
८. अगुरुलघु
९. दान लब्धि
१०. लाभ लब्धि
११. भोग लब्धि
१२. उपभोग लब्धि
१३. वीर्य लब्धि

क्षायिक के ३१ प्रकार भी हैं—

१.	ज्ञानावरणीय के —	५
२.	दर्शनावरणीय —	९
३.	वेदनीय —	२
४.	मोहनीय —	२
५.	आयुष्य —	४
६.	नाम —	२
७.	गोत्र —	२
८.	अंतराय —	५

सिद्धों के इकतीस गुण ये ही माने गये हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न १८. क्षायोपशमिक भाव के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : क्षायोपशमिक भाव के बत्तीस प्रकार हैं—

१. ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से आठ

१. मति ज्ञान	२. श्रुत ज्ञान
३. अवधि ज्ञान	४. मनःपर्यव ज्ञान
५. मति अज्ञान	६. श्रुत अज्ञान
७. विभंग अज्ञान	८. भणन-गुणन

२. दर्शनावरणीय से आठ

१-५ पांच इन्द्रिय	६. चक्षु दर्शन
७. अचक्षु दर्शन	८. अवधि दर्शन

३. मोहनीय से आठ

१. सामायिक चारित्र	२. छेदोपस्थापनीय चारित्र
३. परिहार विशुद्धि चारित्र	४. सूक्ष्म संपराय चारित्र
५. देश विरति	६. सम्यग् दृष्टि
७. मिथ्या दृष्टि	८. सम्यग् मिथ्या दृष्टि

४. अंतराय से आठ

१. दान लब्धि	२. लाभ लब्धि
३. भोग लब्धि	४. उपभोग लब्धि
५. वीर्य लब्धि	६. बाल वीर्य
७. पंडित वीर्य	८. बाल-पंडित वीर्य

प्रश्न १९. पारिणामिक भाव के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : पारिणामिक भाव के दो प्रकार हैं—

१. सादि पारिणामिक—दिशादाह, विद्युत्, उल्कापात आदि।

२. अनादि पारिणामिक—षट् द्रव्य, भव्यत्व, अभव्यत्व, लोक, अलोक।

पारिणामिक जीवाश्रित व अजीवाश्रित दोनों होता है।

प्रश्न २०. जीवाश्रित पारिणामिक के कितने भेद हैं?

उत्तर : जीवाश्रित पारिणामिक के दस भेद हैं—

१. गति	२. इंद्रिय
३. कषाय	४. लेश्या
५. योग	६. उपयोग

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

७. ज्ञान ८. दर्शन
९. चारित्र १०. वेद

प्रश्न २१. अजीवाश्रित पारिणामिक के कितने भेद हैं?

उत्तर : अजीवाश्रित पारिणामिक के दस भेद हैं—

१. बंधन २. गति
३. संस्थान ४. भेद
५. स्पर्श ६. रस
७. गंध ८. वर्ण
९. अगुरुलघु १०. शब्द

प्रश्न २२. क्या छठा भाव भी होता है?

उत्तर : छठे भाव का भी आगमों में उल्लेख मिलता है। वह है सान्निपातिक। इसे सांयोगिक भी कहते हैं। उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम व पारिणामिक भावों के द्विक् संयोग, त्रिक् संयोग, चतुष्क संयोग व पांच संयोग से निष्पन्न होते हैं।

प्रश्न २३. सान्निपातिक के कितने भंग हो सकते हैं?

उत्तर : सान्निपातिक के २६ भंग होते हैं।

द्विक् संयोग के दस भंग होते हैं—

१. औदयिक, औपशमिक २. औदयिक, क्षायिक
३. औदयिक, क्षायोपशमिक ४. औदयिक, पारिणामिक
५. औपशमिक, क्षायिक ६. औपशमिक, क्षायोपशमिक
७. औपशमिक, पारिणामिक ८. क्षायिक, क्षायोपशमिक
९. क्षायिक, पारिणामिक १०. क्षायोपशमिक , पारिणामिक

त्रिक् संयोग के दस भंग होते हैं—

१. औदयिक, औपशमिक, क्षायिक
२. औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक
३. औदयिक, औपशमिक, पारिणामिक
४. औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक
५. औदयिक, क्षायिक, पारिणामिक
६. औदयिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक
७. औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक
८. औपशमिक, क्षायिक, पारिणामिक

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

९. औपशमिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक
१०. क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक

चतुष्क संयोग के पांच भंग होते हैं—
१. औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक
२. औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, पारिणामिक
३. औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक
४. औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक
५. औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक

पांच संयोग का एक भंग है—
१. औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक

प्रश्न २४. एक भाव कहां होता है?

उत्तर : किसी व्यक्ति विशेष में एक भाव नहीं होता। अजीव में एक पारिणामिक भाव होता है। चौदहवां गुणस्थान भी एक पारिणामिक भाव है, किन्तु चौदहवें गुणस्थानवर्ती व्यक्ति में अन्य भाव भी होते हैं।

प्रश्न २५. दो भाव कहां होते हैं?

उत्तर : प्रथम तीन चारित्र-भाव दो-क्षायोपशमिक, पारिणामिक

उपशम श्रेणी का यथाख्यात चारित्र-भाव दो—औपशमिक, पारिणामिक

क्षायिक श्रेणी का यथाख्यात चारित्र-भाव दो—क्षायिक, पारिणामिक

प्रश्न २६. तीन भाव कहां होते हैं?

उत्तर : मिथ्यात्वी व क्षयोपशम सम्यक्त्वी में भाव तीन—औदयिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक।

प्रश्न २७. चार भाव कहां होते हैं?

उत्तर : क्षायिक सम्यक्त्वी गृहस्थ व सामायिक आदि चार चारित्र वालों में भाव चार—औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक।

औपशमिक सम्यक्त्वी यथाख्यात चारित्र वालों में भाव चार—क्षायिक भाव छोड़कर।

प्रश्न २८. पांच भाव कहां होते हैं?

उत्तर : क्षायिक सम्यक्त्वी औपशमिक चारित्र वालों में भाव पांचों ही होते हैं। ये मात्र ग्यारहवें गुणस्थान में होते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न २९. पांच भाव में ज्ञेय, हेय व उपादेय कितने हैं?

उत्तर : ज्ञेय पांचों ही भाव हैं। हेय एक औदयिक भाव है। पारिणामिक भाव हेय व उपादेय दोनों हैं। शेष तीन भाव उपादेय हैं।

प्रश्न ३०. पांच भावों में सावद्य कितने, निरवद्य कितने हैं?

उत्तर : औदयिक भाव सावद्य है। कुछ उदयजन्य प्रकार सावद्य, निरवद्य दोनों नहीं हैं, जैसे—चार गति आदि। कुछ उदयजन्य प्रकार क्षायोपशमिक भाव के साहचर्य से निरवद्य माने गए हैं, जैसे—तीन शुभ लेश्या। पारिणामिक भाव सावद्य, निरवद्य दोनों हैं। अवशिष्ट तीन निरवद्य हैं।

प्रश्न ३१. पांच भाव छह में कौन, नौ में कौन?

उत्तर : उदय व क्षायिक छह में—पुद्गल : नौ में चार—अजीव, पुण्य, पाप, बंध
उपशम व क्षयोपशम छह में—पुद्गल : नौ में तीन—अजीव, पाप, बंध
पारिणामिक छह में—छह : नौ में—नौ।

प्रश्न ३२. पांच भावों का निष्पन्न छह में कौन, नौ में कौन?

उत्तर : उदय निष्पन्न-छह में—जीव : नौ में दो—जीव, आश्रव
उपशम तथा क्षयोपशम निष्पन्न-छह में—जीव : नौ में तीन—जीव, संवर, निर्जरा
क्षायिक निष्पन्न-छह में—जीव : नौ में चार—जीव, संवर, निर्जरा, मोक्ष
पारिणामिक निष्पन्न छह में—छह : नौ में—नौ।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org